हज़रत उमर (रज़ि०)

डॉ० कौसर यज़दानी नदवी

विषय सूची

दो शब्द

अगर आपने 'बिश्व-नायक' और 'हज़रत अबूबक्र' पढ़ी होगी तो लेखक की ओर से किया गया आपसे एक वादा भी याद होगा, वह यह कि 'इस्लामी इतिहास' पर जुटाई जा रही सामग्री की ये दो आरम्भिक कड़ियां हैं, तीसरी कड़ी 'हज़रत उमर' से सम्बन्धित होगी।

प्रस्तुत पुस्तक 'इस्लामी' राज्य के दूसरे खलीफा— 'हज़रत उमर (रज़ि०)'इस्लामी इतिहास को आगे बढ़ाने की ही एक कड़ी है, जिसमें हज़रत उमर (रज़ि०) का पूरा जीवन-चरित्र, आपके कारनामे, आपका प्रशासन और आपके युग का आदर्श लोकतंत्र आदि अंकित है और यह सब कुछ इस स्पष्टीकरण के साथ है कि हज़रत उमर (रज़ि०) की प्राकृतिक क्षमताएं अपनी जगह पर, किन्तु इन क्षमताओं को सही रुख पर डालने वाला, इन्हें प्रदीप्तमान और आदर्शोन्मुख करने वाला इस्लाम और केवल इस्लाम है। अगर इस्लाम न होता और हज़रत उमर (रज़ि०) ने इस्लामी शिक्षाओं को अपने जीवन में न उतार लिया होता, दूसरे शब्दों में अगर सच्चे स्वामी व पालनहार की कृपा-दृष्टि हज़रत उमर (रज़ि०) पर न हुई होती, तो कौन कह सकता है कि हज़रत उमर (रज़ि०) जग-इतिहास में इसी प्रकार प्रसिद्धि पाते, और इतना ऊँचा स्थान प्राप्त कर लेते कि आज भी इस ऊंचाई को देखकर लोग स्तम्भित रह जाते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक अपने उद्देश्य में कहां तक सफल है, यह तो पाठकगण ही बतायेंगे।

— कौसर यज़दानी

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम
'अल्लाह, दयावान कृपाशील के नाम से'

जन्म, लड़कपन और जवानी

इस्लाम के पहले ख़लीफ़ा हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) बीमार पड़े और उनके रोग ने ज़ोर पकड़ा तो लोगों की यही इच्छा हुई कि वह अपना उत्तराधिकारी स्वयं ही नियुक्त कर दें, वरन् बाद में मतभेद हो सकता है। हज़रत अबूबक्र तो इस मसले पर सोचते ही रहते थे उन्होंने इस बारे में वरिष्ठ साथियों से मशविरे किए और इसी नतीजे पर पहुंचे कि हज़रत उमर (रज़ि०) को ख़लीफ़ा बनाना चाहिए।

कुछ लोगों ने, जिन्हें हज़रत उमर रज़ि० के स्वभाव की तेज़ी का भय था, अपने इस विचार को अबूबक्र के सामने प्रकट किया, तो उन्होंने जवाब दिया कि उमर की सख़्ती इस कारण थी कि वह मेरी नरमी को जानते थे। मेरा तजुर्बा है कि जब मैं गुस्से में होता तो वह गुस्सा दूर करने की कोशिश करते, नरमी देखते तो सख़्ती का सुझाव देते।

मशविरे के बाद जब बात पक्की हो गई तो एक दिन हज़रत अबूबक्र कोठे पर चढ़े। कमजोरी की वजह से चढ़ने की ताक़त नहीं थी। उनकी पत्नी हज़रत असमा बिन्त अमीस उन्हें हाथों से संभाले हुए थीं। नीचे लोग इकट्ठा थे। हज़रत अबूबक्र ने उन्हें सम्बोधित करते हुए कहा :

'क्या तुम उस व्यक्ति को पसन्द करोगे, जिसे मैं उत्तराधिकारी बनाऊं? उसे खूब समझ लो। मैं क़सम खाकर कहता हूँ कि मैंने सोच-विचार करने में कोई कमी नहीं की है और न ही मैंने अपने किसी सगे-सम्बन्धी को नियुक्त किया है। मैं ख़त्ताब के बेटे उमर को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करता हूँ, तुम मेरा कहा सुनो और मानो।'

सबने कहा, 'हमने सुना और माना।'

इसके बाद हज़रत अबूबक्र नीचे उतर आए। हज़रत उस्मान (रज़ि०) को बुलाया और वसीयत लिखवाई, जो इस प्रकार थी—

'यह अबू क़हाफ़ा के बेटे अबूबक्र के आख़िरी वक़्त का वसीयतनामा है, जबकि वह इस लोक से विदा हो रहा है और परलोक में प्रवेश कर रहा है— मैंने उमर इब्न ख़त्ताब को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया, इसलिए उनका हुक्म सुनो और मानो। अच्छी तरह समझ लो कि इस सम्बन्ध में, अल्लाह, उसके रसूल, उसके दीन (धर्म) और स्वयं अपनी और तुम्हारी भलाई का हक़ अदा करने की मैंने भरपूर कोशिश की है। अगर वह न्याय से ही काम लें तो उनका पालन करो और वह न्याय से ही काम लेंगे, ऐसा मेरा विचार है और मेरा अनुभव भी यही है। लेकिन अगर वह न्याय से काम न करें और बदल जायें तो हर व्यक्ति खुद अपनी करनी को भोगेगा। वैसे मेरी नीयत ठीक है, आगे की नहीं जानता। जो लोग अन्याय करेंगे, वे जल्द देख लेंगे कि वे किस पहलू पर पलटा खा रहे हैं और तुम पर शांति और अल्लाह की दया व कृपा हो।'

अपना वसीयतनामा लिखवाने और पढ़कर ऐलान कर देने के बाद हज़रत उमर (रज़ि०) को एकांत में बुलाया और जो समझाना था, समझाया, फिर हाथ उठाकर दुआ की—

'हे अल्लाह! मैंने यह नियुक्ति सिर्फ मुसलमानों की भलाई के

लिए की है और इस भय को सामने रखकर की है कि इनमें बिगाड़ न पैदा हो जाए। मैंने ऐसा काम किया है, जिसे तू अच्छी तरह जानता है। मैंने बहुत सोच-विचार के बाद यह राय बनाई है। सबसे अच्छे और दृढ़ व्यक्ति को उत्तराधिकारी बनाया है, जो मुसलमानों का सबसे बड़ा हितैषी है। मेरे लिए तेरा जो हुक्म आना था, आ चुका अब मैं उनको तेरे सुपुर्द करता हूँ। वह तेरे बन्दे हैं और उनकी लगाम तेरे हाथ में है। हे अल्लाह! उनके अधिकारियों को योग्य बना, उत्तराधिकारी को सन्मार्ग पर चल रहे ख़लीफ़ाओं में से बना और उनकी जनता को क्षमताएं प्रदान कर।'

इस तरह हज़रत उमर (रज़ि०) इस्लामी राज्य के दूसरे ख़लीफ़ा चुन लिए गए, वह राज्य, जिसकी नींव पड़े अभी 13 वर्ष भी पूरे नहीं हुए थे और जो अभी अपने आरम्भिक काल ही से गुज़र रहा था।

जन्म

यह वही हज़रत उमर (रज़ि०) हैं, जिनकी जन्म-तिथि के बारे में कोई बात भरोसे से नहीं कही जा सकती। अनुमान है कि हिजरत के समय उनकी उम्र लगभग 40 साल रही होगी और मृत्यु के समय उनकी उम्र लगभग साठ साल थी।

हज़रत उमर (रज़ि०) जिस वंश से सम्बन्ध रखते थे, वह आठवीं पीढ़ी ऊपर पैग़म्बरे इस्लाम हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के वंश से जाकर मिल जाता था। इस प्रकार इनका भी सम्बन्ध कु़रैश क़बीले के एक प्रतिष्ठित वंश से ही था।

इनके बाप ख़त्ताब अपनी बिरादरी में आदर की दृष्टि से देखे जाते थे, वैसे न बहुत ज़्यादा धनी थे और न नौकरों-चाकरों वाले ही, फिर भी समाज में उन्हें सम्मान प्राप्त था। वे बड़े वीर और पराक्रमी जो थे।

लड़कपन और जवानी

ऐसे बाप के ही लायक़ बेटे थे हज़रत उमर।

हज़रत उमर (रज़ि०) का लड़कपन कुछ असाधारण न था। आम लड़कों की तरह खेलना-कूदना और अरब की परम्पराओं के अनुसार जीवन बिताना ही लड़कपन की मुख्य बात थी।

बाद में उन्होंने लिखना-पढ़ना भी सीख लिया था।

जब हज़रत उमर (रज़ि०) जवान हुए तो जर्जान और मक्का के आसपास के क्षेत्र में अपने पिता के ऊँट चराने लगे। उस समय ऊँटों का चराना क़ुरैश के जवानों के लिए कोई निंदनीय बात न थी, बल्कि बहुधा इसमें भी लोग गर्व का अनुभव करते थे।

हज़रत उमर (रज़ि०) अपनी जवानी में अपने तमाम साथियों के मुक़ाबले में अधिक शक्ति रखते थे और कोई भी जवान उनके स्वास्थ्य और उनके क़द को न पहुंचता था। वे लम्बे बहुत थे। एक बार औफ़ इब्न मालिक ने कुछ लोगों को इकट्ठा देखा, जिनमें एक व्यक्ति सबसे ऊँचा था, इतना ऊँचा कि निगाहें उस पर टिकती न थीं। पूछा, 'यह कौन है?'

जवाब मिला, 'ख़त्ताब के बेटे उमर।'

हज़रत उमर (रज़ि०) का रंग सफेद था, जिस पर लाली छायी रहती थी। टांगें लम्बी होने और जिस्म में ताक़त होने से वे बहुत तेज़ चलते थे और चाल में यह तेज़ी उनकी आदत-सी बन गई थी।

अभी जवानी का आरम्भ ही था कि उन्होंने व्यायाम में महारत हासिल कर ली, मुख्य रूप से पहलवानी में और घुड़सवारी में। जब हज़रत उमर (रज़ि०) मुसलमान हुए तो एक व्यक्ति किसी चरवाहे से मिला और बताने लगा—

'तुम्हें मालूम है वह शक्तिशाली व्यक्ति मुसलमान हो गया?'

'वही, जो उकाज़ के मेले में कुश्ती लड़ता था?' चरवाहे ने पूछा।

'हां, वही।' उस व्यक्ति ने जवाब दिया।

घोड़े की सवारी हज़रत उमर (रज़ि०) का बड़ा प्रिय काम था, यहां तक कि इसमें उन्हें जीवन भर दिलचस्पी रही। जब वह ख़लीफ़ा थे उसी समय की यह घटना है कि एक दिन वे घोड़े पर सवार हुए। एड़ जो लगाई तो घोड़ा हवा से बातें करने लगा और कई रास्ता चलने वाले उसकी चपेट में आते-आते रह गए।

जिस तरह हज़रत उमर (रज़ि०) पहलवानी और घुड़सवारी में माहिर थे, वैसे ही उनकी रुचि कविता में भी थी। वह उकाज़ और उसके अलावा दूसरी जगह के कवियों की कविताएं सुनते। जो पद पसन्द आते, उन्हें कंठस्थ कर लेते और उचित अवसरों पर रस ले-लेकर पढ़ते।

अरब की वंशावलियों को याद रखने में तो वे पारंगत थे। यह गुण उन्हें अपने बाप से मिला था।

हज़रत उमर (रज़ि०) बातचीत करने और मन की बात को दूसरों तक पूरे प्रभाव के साथ पहुंचा देने में बड़े दक्ष थे। इसीलिए इन्हें कुरैश का दूत बनाकर दूसरे कबीलों को भेजा जाता और इसीलिए आपसी झगड़ों में इनके निर्णयों को ऐसे ही मान लिया जाता, जैसे इनसे पहले इनके बाप के निर्णय मान लिए जाते थे।

हज़रत उमर (रज़ि०) मक्का के दूसरे नौजवानों की तरह, बल्कि उनसे ज़्यादा ही शराब के रसिया थे और उन्हें अरब-सुन्दरियों से प्रेम करने और प्रेम की पेंगें बढ़ाने का बड़ा शौक़ रहा करता। ये दोनों रुचियां हज़रत उमर (रज़ि०) ही तक सीमित नहीं थीं, बल्कि कुरैशी नौजवानों की सामान्य रुचि ही यही थी।

जब हज़रत उमर (रज़ि०) की जवानी अपनी रंगीनियों

के साथ विदा होने लगी तो उनके मन में विवाह की इच्छा पैदा हुई। संतान अधिक प्राप्त करने के लिए बहु पत्नित्व विवाह उनकी वंश-परम्परा थी। इसीलिए उन्होंने भी अपने जीवन में 9 औरतों से विवाह किया जिनसे- 12 बच्चे पैदा हुए—आठ लड़के और चार लड़कियाँ।

हज़रत उमर (रज़ि०) अपने बाप की तरह बड़े सख़्त और तीखे स्वभाव के थे। जवानी में यह स्वभाव और भी स्पष्ट था। इसीलिए जब मुसलमानों का अमीर (ख़लीफ़ा) उन्हें बनाया गया तो उनकी सबसे पहली दुआ यह थी—

'हे अल्लाह!- मैं सख़्त हूँ, मुझे नम्र बना।'

इस प्रकार अभी हज़रत उमर (रज़ि०) 26-27 वर्ष ही के थे कि हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने इस्लाम का आह्वान शुरू कर दिया। आरम्भ में एक अल्हड़ नौजवान की तरह उन्हें इस्लाम से कोई दिलचस्पी न थी, उससे न लगाव था, न वैर ही, लेकिन इस नई 'बात' से उन्हें जिस 'हलचल' का आभास हो रहा था, उससे उन्हें कुढ़न ज़रूर रहती और वे मन ही मन कुढ़ते रहते।

इस्लाम का विरोध

इस्लामी आह्वान ज्यों-ज्यों फैलता रहा, हज़रत उमर (रज़ि०) की कुढ़न भी बढ़ती रही, यहां तक कि वे इस्लाम के कट्टर शत्रु हो गए। इस्लाम में शक्ति जिस तेज़ी से पैदा हो रही थी, उमर का विरोध भी बढ़ता जा रहा था, यहां तक कि इस्लाम का फैलना और बढ़ना, उनकी आंखों में बुरी तरह खटकने लगा।

इसका कारण यह न था कि इससे उनकी किसी पद-प्रतिष्ठा पर आंच आ रही, थी, उनका इस्लाम से वैर केवल इस कारण हो गया था कि वे कुरैश को एक और केवल एक शक्तिशाली क़बीला बनाए रखना चाहते थे। हज़रत उमर (रज़ि०) का वैमनस्य हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) से निरुद्देश्य भी न था, उन्हें खूब मालूम था कि मक्का में आप से अधिक ज्ञान रखने वाला सच्चा और ईमानदार व्यक्ति कोई नहीं, फिर भी उनका विचार था कि अगर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की बातें मानी जाती रहीं और इस्लाम फैलता चला गया तो मक्का की व्यवस्था और शान्ति छिन्न-भिन्न हो जाएगी। वह मक्के में शांति देखना चाहते थे, कुरैश को एक लड़ी में पिरोया हुआ देखना चाहते थे। उनके नज़दीक इस्लाम के फैलने का अर्थ था, कुरैश की एकता का नष्ट होना, मक्का की 'मान-मर्यादा' का दो कौड़ी का हो जाना और कुरैश क़बीले का बेजान होकर अरब के दूसरे क़बीले का ग्रास बन जाना, मानो आज की परिभाषा में हज़रत उमर (रज़ि०) को राष्ट्रीयता प्रिय थी और वह राष्ट्र पर धर्म और सिद्धांत को बलि दे देना ही पसन्द करते थे।

जब आदमी कुढ़ता है

यही कुढ़न थी, जिसने उनके स्वभाव में उग्रता पैदा कर दी थी। इस्लाम को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए वे रोज नई-नई चालें सोचने लगे–

कभी वे कमज़ोर मुसलमानों को मारते-मारते बेहाल कर देते, उन पर ज़ुल्म का पहाड़ तोड़ देते और कभी इस प्रकार सोचते–

'आख़िर इन बेचारों का अपराध क्या है कि इन्हें सताया जाए, मारा और पीटा जाए। अपराध तो जो कुछ है, वह मुहम्मद (सल्ल०) और उनके आह्वान का है,ये उसी की जादू भरी बातें तो हैं, जिन्होंने ग़रीबों को उसी का बनाकर रख दिया है। अगर मुहम्मद (सल्ल०) को ख़त्म कर दिया जाए तो झगड़ा ही साफ़ हो जाए, अशांति की जड़ ही कट जाएं और मक्का फिर से शांति का घर बन जाए और एक व्यक्ति का क़त्ल, किसी क़बीले, बल्कि मक्का के तमाम क़बीलों की निजात के मुक़ाबले में महत्व ही क्या रखता है, अगर इससे क़ुरैश की सामाजिक स्थिति और मक्का की राष्ट्रीय व्यवस्था को ठीक रखने का मौक़ा मिल जाएं।'

और कभी सोचते–

'मुहम्मद (सल्ल०) की बातें बड़ी मनमोहक होती हैं। वे लोगों को बड़े सुन्दर ढंग से अपनी बातें समझाते हैं। फिर वह एक ऐसा व्यक्ति है, जिसे क़ुरैश ने आज तक झूठ बोलते नहीं देखा, तो क्या उसे केवल इसलिए क़त्ल कर दिया जाए कि वह कहता है– 'अल्लाह मेरा पालनहार है' और इसलिए कहता है कि उस पर ईमान रखता है?'

कभी सोचने का यह अन्दाज़ होता–

'उसे क़त्ल करने या उससे छुटकारा पाने का तरीक़ा क्या हो? वह तो बनूहाशिम में से है और बनूहाशिम उसके मददगार हैं। फिर

जो लोग उस पर ईमान लाए हैं, जिन्होंने उसकी बातें मान ली हैं और उसके साथी बन गए हैं, उनमें ऐसे लोग भी हैं, जिनका सम्बन्ध प्रतिष्ठित घरानों से है और बनूहाशिम की तरह उनके क़बीले भी उनकी रक्षा व प्रतिरक्षा पर उतारू हैं। देखो ना, अबू बक्र और तलहा इब्न उबैदुल्लाह बनू तीममुर्रा से, अब्दुर्रहमान इब्न औफ़ और साद इब्न अबी वक़्क़ास बनू ज़ुहरा से, उस्मान इब्न अफ़्फ़ान बनू अब्दशम्स से, अबूउबैदा इब्न जर्राह बनू फ़ह्र मालिक से और ज़ुबैर इब्न अव्वाम बनू असद से सम्बन्ध रखते हैं और इन सबको अपने-अपने क़बीले में वह स्थान प्राप्त है कि अगर इन पर किसी ने हाथ उठाया तो ये क़बीले उनकी मदद ज़रूर करेंगे। अब अगर उमर इनसे, इनके साथ मुहम्मद (सल्ल०) से लड़े और क़ुरैश को इनके ख़िलाफ़ भड़काए, तो मक्का में ऐसा गृह-युद्ध छिड़ जाएगा, जिसे देखते हुए इस ख़तरे की कोई अहमियत नहीं रह जाती कि मक्का की प्रतिष्ठा को मुहम्मद और मुहम्मद के आह्वान से आघात पहुंच सकता है।'

ये और ऐसे ही विचार हज़रत उमर (रज़ि०) के मन में जन्म लेते रहे और उनके भीतर की शांति को जड़ से उखाड़ फेंकते रहे, यहां तक कि यह विचार मन में बैठने लगा कि मुहम्मद (सल्ल०) को क़त्ल कर दिया जाए और फिर क़ुरैश की एकता और मक्का की प्रतिष्ठा के लिए जो विपदाएं भी झेलनी पड़ें, झेली जाएं।

विचित्र निर्णय

ज्यों-ज्यों हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) का सन्देश फैलता जा रहा था, हज़रत उमर की परेशानी भी बढ़ती जा रही थी, उनका मानसिक सन्तुलन बिगड़ता जा रहा था। उन्हें मक्का से प्रेम था, मक्का के लोगों से हमदर्दी थी, इसीलिए वे यह देख-देखकर दुखी होते कि इस्लाम का दामन पकड़ने के बाद मक्कावासी मुसलमान

इस्लाम से ऐसा चिमट जाते हैं कि लाख मारो-पीटो, लाख धमकी दो, लेकिन वे इससे विचलित होने वाले नहीं। उनकी नज़र में इस्लाम मक्का की शांति भंग करने का कारण बन रहा है और क़बीलागत और जातिगत पक्ष लेने के बजाय थोथे 'सिद्धांतपरक' भेद-भाव उत्पन्न कर रहा है।

इसी बीच मुसलमानों को पहुंचाए जा रहे कष्ट व पीड़ा को देख कर पैग़म्बरे इस्लाम हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने अपने साथियों को इसकी इजाज़त दे दी, बल्कि उन्हें मशविरा भी दिया कि वे कहीं और चले जाएं, ताकि अपने धर्म पर आसानी से ज़मे रह सकें। आप के कहने पर मुसलमान हब्श की ओर जाने लगे तो हज़रत उमर (रज़ि०) की परेशानी और बढ़ गई। उन्हें मक्का के एक-एक व्यक्ति से हमदर्दी थी, उन्हें मुसलमानों का मक्का छोड़ना खलने लगा। वे भी जुदाई की घबराहट महसूस करने लगे। उम्मे अब्दुल्लाह बिन्त अबी हसमा कहती हैं कि—

खुदा की कसम! जब हम हब्श की ओर हिजरत कर रहे थे, उमर आए और मेरे पास खड़े हो गए। वे अभी तक अपने पुराने धर्म पर जमे हुए थे और हमें उनकी ओर से बड़े-बड़े कष्ट सहन करने पड़ रहे थे। उन्हीं उमर ने मुझ से कहा— 'उम्मे अब्दुल्लाह! क्या (हब्श) जाना तय है?' मैंने कहा— 'हां, खुदा की क़सम, हम ज़रूर अल्लाह की फैली ज़मीन में निकल जाएंगे। तुम लोगों ने हमें बहुत सताया, हम पर अन्याय व अत्याचार की अति कर दी, यहां तक कि अल्लाह ने हमारे निजात की राह पैदा कर दी।' बोले, 'अल्लाह तुम्हारे साथ हो।' जैसी विनम्रता मैंने उनमें उस समय देखी, वैसी कभी न देखी थी। इसके बाद वे चले गए।

अपने देश और जाति वालों की इस करुण और दयनीय दशा को देखकर उमर का मन पसीज गया और आंखों के सामने अशांति

का एक चित्र खिंच गया। उन्होंने अपने भीतर एक टीस-सी महसूस की और उसी समय तय कर लिया कि किसी निर्णायक कोशिश के बिना इस दुखद स्थिति से छुटकारा सम्भव नहीं। उन्होंने तत्काल ही 'राह के कांटे' हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) को क़त्ल करने की ठान ली।

इस्लाम की गोद में

एक दिन सुबह वह क़त्ल करने के इरादे से निकल पड़े। उन्होंने पहले ही मालूम कर लिया था कि अल्लाह के रसूल अपने कुछ साथियों के साथ अरक़म के मकान में ठहरे हुए हैं। साथियों की संख्या लगभग पैंतालीस है। वह निडर और बहादुर तो थे ही आपके साथियों की कुछ परवाह न कर नंगी तलवार हाथ में लिए चल पड़े। उसी ओर रास्ते में नईम इब्न अब्दुल्लाह मिल गए। उन्होंने पूछा–

'कहां को चले?'

'मुहम्मद का किस्सा पाक करने जा रहा हूँ।' उमर बोले, 'इसलिए कि यही वह 'विधर्मी' है, जिसने क़ुरैशियों में फूट डाल दी है, उनका धर्म ख़तरे में पड़ गया है, उनके देवताओं को बुरा-भला कहा है, मैं आज उसे क़त्ल करके ही चैन लूंगा।'

'ख़ुदा की क़सम उमर! तुम अपने आपको धोखा दे रहे हो।' नईम ने बताया, 'क्या तुम यह समझते हो कि अगर तुमने मुहम्मद (सल्ल०) को क़त्ल कर दिया तो अब्दे मुनाफ़ के वंश वाले तुम्हें अकड़ता फिरने के लिए ज़मीन पर छोड़ देंगे?– और यह कि अपने घर वालों की ख़बर लो, फिर उनसे निबटना।'

उमर ने पूछा–

'मेरे घरवाले कौन?'

नईम ने जवाब दिया–

'तुम्हारे बहनोई और चचेरे भाई सईद इब्ने ज़ैद और तुम्हारी

बहन फ़ातिमा बिन्त खत्ताब, अल्लाह की क़सम! वे दोनों मुसलमान हो चुके हैं और मुहम्मद के धर्म का पालन करते हैं। जाओ, पहले उन्हें समझाओ।'

ऐसा सुनते ही उमर का गुस्सा भड़क उठा। वे फ़ौरन अपनी बहन के घर पहुंचे। उस समय ख़ब्बाब इब्न अरत हाथ में पवित्र क़ुरआन लिए सईद और फ़ातिमा को सूरः ताहा पढ़ा रहे थे।

उमर की पहुंचाई हुई यातनाओं को कौन नहीं जानता, आहट पाते ही ख़ब्बाब एक किनारे हो गए और क़ुरआन के हिस्सों को फ़ातिमा ने छिपा लिया। हज़रत उमर ने ख़ब्बाब की आवाज़ सुन ली थी। घर में घुसते ही कहने लगे—

'यह क्या हो रहा था?'

'कुछ भी तो नहीं।' फ़ातिमा बोलीं।

'नहीं, खुदा की कसम!' उमर चिघाड़े, 'मुझे मालूम हो चुका है कि तुम दोनों ने मुहम्मद(सल्ल०) का धर्म अपना लिया है।' इतना कहकर वे बहनोई सईद इब्न ज़ैद पर झपट पड़े। बहन फ़ातिमा अपने पति को बचाने दौड़ीं तो उन्हें इतना मारा कि लहूलुहान कर दिया। पर धन्य हैं वे दोनों कि इतनी मार पड़ने पर भी उन्होंने अपने धर्म को छिपाया नहीं, साफ़-साफ़ कह दिया—

'हां, हम मुसलमान हो गए हैं और अल्लाह और उसके रसूल पर ईमान ले आए हैं, कर लो, जो तुम्हारा जी चाहे।'

उमर जैसा बहादुर उनकी दृढ़ता पर चकित रह गया और एक बार फिर सोचने लगा—'

'आख़िर मुहम्मद(सल्ल०) अपने अनुयायियों में क्या जादू भर देते हैं और इस्लाम में वह क्या आकर्षण है कि सहज ही लोग इस ओर खिंचे चले आते हैं। देखना चाहिए मुहम्मद क्या कहते हैं?'

वे बहन से बोले-

'देखूँ तो तुम लोग क्या पढ़ रहे थे? तनिक मालूम तो हो कि मुहम्मद क्या कहता है?'

'हमें तो तुमसे डर लगता है।' बहन बोलीं।

'डरो नहीं।' और उन्होंने देवताओं की क़सम खाई कि देखकर वापस कर दूंगा। फ़ातिमा ने कुरआन दे दिया। पढ़ा तो मौन, स्तब्ध!

'हें, कितनी महान व दिव्य बाणी है, निश्चय ही यह महा सत्य है!' सोचने लगे, 'मुहम्मद सच्चे हैं। आज तक उन्होंने अपने लिए भी एक शब्द झूठ नहीं कहा, तो वह झूठ ही इस दिव्य बाणी के संबंध जग के पालनहार से कैसे जोड़ देंगे? मुहम्मद सच्चे हैं, वह कभी झूठ नहीं बोल सकते। यह किताब (कुरआन) भी सच्ची है और इसकी बातें भी सच्ची हैं।'

ऐसा सोचते-सोचते हज़रत उमर (रज़ि०) का अन्तर जाग उठा। उनका मन उसी वक़्त हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) से मिलने और उनसे मिलकर उनकी बात सुनने और समझने के लिए बेचैन हो उठा।

फिर वे हुज़ूर (सल्ल०) से मिलने के लिए चल पड़े। कैसी विडम्बना है यह! कहां उमर चले थे मुहम्मद (सल्ल०) को क़त्ल करने और कहाँ अब मुहम्मद (सल्ल०) ही की शरण में जाने को तैयार हो गए। तलवार हाथ की हाथ में रह गई, हां! अब उसकी धार कुंद हो चुकी थी।

अरक़म के द्वार पर पहुंचकर दरवाज़ा खटखटाया। आवाज़ सुनकर एक साहब उठे और किवाड़ से झांककर देखा, हज़रत उमर हाथ में तलवार लिए खड़े हैं। हज़रत उमर (रज़ि०) जैसे व्यक्ति को इस हालत में देखकर उनका घबराना स्वाभाविक था। हुज़ूर सल्ल० के पास लौट आए और आपको पूरी बात बता दी। लोग समझे, अनहोनी होने वाली है। किसी को क्या पता था कि हज़रत उमर

(रज़ि०) के अन्तर में किस प्रकार की भावनाएं हिलोरें ले रही हैं। कौन जानता था, इस्लाम का यह कट्टर विरोधी, इस्लाम की गोद में गिरने के लिये बेचैन है। कौन समझ सकता था कि खुली हुई यह तलवार मुहम्मद (सल्ल०) और आपके अनुयायियों पर अब नहीं उठेगी, बल्कि इसकी धार तो अब इस्लाम-विरोधियों के लिए मुड़ चुकी है। यहां तो भय की लहर दौड़ गई, पर अल्लाह के अलावा और किसी से न डरने वाले अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के चेहरे पर कोई प्रतिक्रिया न हुई, उसी शांत-भाव से बोले—

'आने दो।'

उन्हें आता देख हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) उठे, उनकी चादर का कोना पकड़ कर ज़ोर से झटका दिया और कहा—

'हे ख़त्ताब के बेटे! तुम किस इरादे से आए हो? अल्लाह की कसम! अगर तुमने अपनी मनमानी की तो अल्लाह का ग़ज़ब तुम पर आ जाएगा।'

हज़रत उमर (रज़ि०) प्रभावित हुए बिना न रहे।

'हे अल्लाह के रसूल!' हज़रत उमर (रज़ि०) का उत्तर था यह, 'मैं सिर्फ़ इसलिए हाज़िर हुआ हूं कि अल्लाह, उसके रसूल, उसकी वह्य (प्रकाशना) पर ईमान ले आऊं।'

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का चेहरा ख़ुशी से खिल उठा। बेइख़्तियार पुकार उठे—

'अल्लाहु अकबर' (अल्लाह ही बड़ा है)!

मानो हज़रत उमर (रज़ि०) के मुसलमान होने का ऐलान कर दिया गया।'

मक्का में

हज़रत उमर (रज़ि०) मुसलमान क्या हुए, इस्लाम खुलकर मैदान में आ गया। निर्भय होकर इस्लाम का प्रचार करना उन्होंने अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया। हज़रत उमर (रज़ि०) ही के कथनानुसार–

"जिस रात मैंने इस्लाम कुबूल किया, सोचा कि क़ुरैश में अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का सबसे बड़ा शत्रु कौन है कि मैं उसके पास जाऊँ और उसे अपने मुसलमान होने की ख़बर सुनाऊँ। दूसरे दिन सुबह-सवेरे मैंने अबू जहल का दरवाज़ा जाकर खटखटाया। वह बाहर आया और मुझे देखकर बोला, 'आओ भतीजे! कहो, कैसे आना हुआ?' मैंने जवाब दिया, 'मैं तुम्हें यह बताने आया हूँ कि मैं अल्लाह और उसके रसूल पर ईमान ले आया हूँ और गवाही देता हूँ कि वे जो कुछ कहते हैं, सच कहते हैं।' अबू जहल ने दरवाज़ा बन्द करते हुए कहा, 'अल्लाह तुम्हें और तुम्हारी ख़बर को रुसवा करे।"

जब हज़रत उमर ने इस्लाम की शरण ली थी, उनके बेटे हज़रत अब्दुल्लाह भी अच्छे-भले बड़े और समझदार हो चले थे। उन्हीं अब्दुल्लाह का कथन है कि 'हज़रत उमर (रज़ि०) को अपना इस्लाम प्रकट करने का बड़ा शौक था, साथ ही 'जो अपने लिए पसन्द करो, वही दूसरों के लिए भी पसन्द करो' सरीखे भाव के अनुसार उन्होंने इस्लाम के शुभ सन्देश को दूसरों तक पहुंचाने में भी कोई कसर न छोड़ी। इसके लिए वे क़ुरैश से बराबर लड़ते रहते। हज़रत अब्दुल्लाह कहते हैं, 'जब मेरे पिता ईमान लाए तो

पूछा, कुरैश में सबसे बड़ा बातूनी और ढिंढोरची कौन है? कहा गया, जमील इब्न आमरुलजमई। उसके पास पहुंचे और कहा, 'जमील! तुम्हें मालूम है, मैंने इस्लाम कुबूल कर लिया है और मैं मुहम्मद (सल्ल०) के धर्म में दाख़िल हो गया हूँ।' ख़ुदा की क़सम! उसने एक शब्द न कहा और अपनी चादर घसीटता हुआ चला गया। हज़रत उमर (रज़ि०) भी उसके पीछे-पीछे हो लिए। जमील मस्जिद के दरवाज़े पर खड़ा हो गया और चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगा, 'हे कुरैशियो!' कुरैशी उस समय चारों ओर टोलियां बनाए बैठे थे– 'तुम्हें मालूम है, उमर विधर्मी हो गया है?' तुरन्त ही हज़रत उमर (रज़ि०) ने कहा, 'यह बकता है, मैं तो इस्लाम लाया हूं और गवाह बनाता हूं कि अल्लाह के अलावा कोई उपास्य नहीं और मुहम्मद (सल्ल०) उसके बन्दे और उसके रसूल हैं।' इतना सुनते ही कुरैश के लोग उत्तेजित हो उठे और हज़रत उमर (रज़ि०) से लड़ने लगे, यहां तक कि सूर्य सिर पर आ गया तो हज़रत उमर (रज़ि०) थक कर बैठ गए। कुरैश उन पर टूटे पड़ रहे थे। हज़रत उमर (रज़ि०) ने उनसे कहा, 'कर लो, जो तुम्हारा जी चाहे, मैं कसम खाकर कहता हूं कि अगर हम तीन सौ की तायदाद में होते तो या सब कुछ तुम से ले लेते या सब कुछ तुम्हारे लिए छोड़ देते।' बाद में एक व्यक्ति के बीच-बचाव से उनकी जान बची।

कहा जाता है कि हज़रत उमर (रज़ि०) ने कई बार अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से निवेदन किया कि 'हे अल्लाह के रसूल (सल्ल०)! क्या हम सत्य पर नहीं हैं?'

आपने फ़रमाया, 'हां क़सम है उस सत्ता की, जिसके हाथ में मेरी जान है, तुम लोक-परलोक में सत्य पर हो।'

'फिर यह चोरी क्यों?' हज़रत उमर (रज़ि०) ने कहा, 'क़सम है उस सत्ता की, जिसने आपको नबी बनाया, हम ज़रूर ही खुलकर सामने आएंगे।'

हज़रत उमर (रज़ि०) इस्लाम ले आए थे, इसलिए ज़रूरी था कि सबको उनके इस्लाम की सूचना मिल जाए, ताकि जो बिगड़ना चाहे बिगड़ ले और जो लड़ना चाहे लड़ ले। इस पर उपर्युक्त घटनाएं भी गवाह हैं। वे शक्तिशाली थे और उन्हें अपनी शक्ति पर भरोसा था, वे जवान थे और उन्हें अपनी जवानी का मान था। वे हिम्मत वाले थे और जानते थे कि उन्हें कोई वश में नहीं कर सकता, उन्हें कोई नहीं डरा सकता। यही कारण था कि उन्होंने दूसरे मुसलमानों की तरह छिपकर कोई काम नहीं किया, बल्कि मुसलमानों के साथ काबा में नमाज़ पढ़ने की क़सम खाई और उस समय जब मुसलमान मक्का के आस-पास की पहाड़ियों में छिप-छिपकर नमाज़ें पढ़ते थे।

हज़रत उमर की क़सम पूरी हुई।

हज़रत अब्दुल्लाह इब्न मसऊद कहा करते थे, 'उमर का इस्लाम हमारी विजय, उनकी हिजरत हमारी सफलता और उनका ख़लीफ़ा होना अल्लाह की कृपा थी। जब तक उमर इस्लाम नहीं लाए थे, हम काबा में नमाज़ नहीं पढ़ सकते थे, पर जब वे मुसलमान हुए तो क़ुरैश को लड़-झगड़ कर मजबूर कर दिया कि मुसलमानों को काबे में नमाज़ पढ़ने से न रोकें।' वे यह भी कहा करते थे कि जब से उमर मुसलमान हुए, हमारा मान बढ़ गया।

हज़रत सुहैब इब्न सिनान से रिवायत है कि जब उमर मुसलमान हुए, इस्लाम खुलकर सामने आ गया और उसके आह्वान का खुलकर प्रचार किया जाने लगा। हम काबे के चारों ओर घेरे बना कर बैठते और अल्लाह के घर का तवाफ़ करते, वे ज़्यादती करने वालों से बदला लेते और क्रूरता दिखाने वाले को मुंह-तोड़ जवाब देते।

यह सच है कि हज़रत उमर (रज़ि०) उस समय तक चैन से न बैठे, जब तक अपने और अपने मुसलमान भाइयों के लिए काबे और

उसके आस-पास में नमाज़ पढ़ने के वे तमाम अधिकार न प्राप्त कर लिए, जो अल्लाह के शत्रुओं को अल्लाह के घर में प्राप्त थे। इस बात ने क़ुरैश के तमाम क़बीलों पर असर डाला। इनमें से बहुतों के दिल इस्लाम के लिए बेचैन थे, पर क़ुरैश के अत्याचारों और शरारतों को देखकर उन्हें भय होता था। उन्होंने जब देखा कि हज़रत उमर इस्लाम ले आए हैं और उन्होंने अपनी ताक़त और हिम्मत के बल पर क़ुरैश को इतना आतंकित कर दिया है कि बिना किसी बाधा के मुसलमानों के साथ काबे में नमाज़ पढ़ी जाने लगी है, तो उनकी भी हिम्मतें बढ़ीं और वे मुसलमान हो गए, यहां तक कि क़ुरैश ने कहना शुरू कर दिया कि 'उमर और हमज़ा के इस्लाम ने मुहम्मद के सन्देश को क़ुरैश के तमाम क़बीलों में फैला दिया है।' क़ुरैशियों ने इतना प्रचार किया कि मक्का से निकलकर यह ख़बर हब्श तक पहुंच गई। मक्का के विरोधियों के अत्याचारों से तंग आकर जो लोग हब्श चले गए थे, उन्होंने अपने देश को वापस हो जाने का इरादा कर लिया, पर अभी वे मक्का के क़रीब पहुंचे ही थे कि मालूम हुआ, यह ख़बर झूठी है और वे वापस चले गए। केवल वही लोग मक्का आए, जिन्हें किसी ने पनाह दी या जो क़ुरैश से आंख बचाकर चुपके से दाख़िल हो गए।

सामाजिक बहिष्कार

क़ुरैश इस्लाम की इस प्रकार बढ़ती हुई ताक़त से बड़े चिंतित थे। उनके तमाम क़बीलों ने मिलकर एक प्रतिज्ञा-पत्र तैयार किया कि बनू हाशिम और बनू अब्दुल मुत्तलिब से सामाजिक सम्बन्ध काट लिए जाएं, न उन्हें बेटी दी जाए, न उनकी बेटी ली जाए, न उनसे कोई चीज़ ख़रीदी जाए, न उनके हाथ कोई चीज़ बेची जाए और इस प्रतिज्ञा-पत्र के पालन में दृढ़ रहने के लिए उसे काबा के आंगन में लटका दिया गया।

इस प्रतिज्ञा-पत्र ने क़ुरैश और मुसलमानों के संघर्ष को चरम सीमा पर पहुंचा दिया। यही वह समय था, जो इस्लाम और मुसलमानों के लिए बड़ा ही कठोर और कठिन था। इस बहिष्कार के बाद बनूहाशिम और बनू अब्दुल मुत्तलिब परिवारों के साथ-साथ दूसरे मुसलमान भी 'घाटी अबूतालिब' में चले गये। 3 वर्ष तक इन लोगों का जीवन बड़े कष्ट में बीता, यहां तक कि पत्ते खा-खा कर भूख मिटानी पड़ी और वे सूखा हुआ चमड़ा उबाल कर खाने पर मजबूर हुए। अन्त में जब लगातार 3 साल तक बनूहाशिम अपनी सहनशीलता का परिचय कराते रहे तो इन्हीं दुष्टों में से कुछ को दया आई और इस अमानवीय निश्चय को भंग कर दिया गया।

लेकिन फिर भी शत्रुओं की दमन-नीति में तनिक भी लचक पैदा न हुई। उनके अत्याचार मुसलमानों पर और बढ़ गए और वे वह कुछ करने लगे, जिसकी आशा भी नहीं की जा सकती थी, यहां तक कि पैग़म्बरे इस्लाम और दूसरे मुसलमानों की जानें भी ख़तरे में रहने लगीं। अन्य मुसलमानों की तरह हज़रत उमर (रज़ि०) को भी क़ुरैश के हाथों कड़ी यातनाएँ सहन करनी पड़ीं, पर उन्होंने जिस निर्भीकता और बहादुरी के साथ इन तकलीफ़ों को बर्दाश्त किया, वह अपना उदाहरण आप है। आज़माइश के इस दौर ने हज़रत उमर (रज़ि०) के ईमान को दृढ़ (मज़बूत) बना दिया, उनकी योग्यताओं को उभार दिया और वह पैग़म्बरे इस्लाम की नज़रों में करीब से करीबतर होते चले गए।

एक ओर क़ुरैश का विरोध चरम सीमा पर था और दूसरी ओर इस्लाम का प्रचार भी पूरे वेग से हो रहा था, यहां तक कि इस्लाम मक्का से बाहर मदीना पहुंच गया और वहां दो-तीन साल के भीतर ही ऐसा वातावरण बन गया कि हज़रत मुहम्मद सल्ल० ने मक्का के मुसलमानों को वहां चले जाने और मक्का छोड़ देने की आम इजाज़त दे दी। इस इजाज़त पर हज़रत उमर (रज़ि०) भी

मदीना को हिजरत कर गए।

हज़रत उमर (रज़ि०) मदीना के बाहर बसे एक गांव क़ुबा में पहुंचे और बनू अम्र इब्न औफ़ कबीले में रिफ़ाआ इब्न अब्दुल मुन्ज़िर के यहाँ ठहरे रहे। बाद में इनके बाल-बच्चे भी यहां आ गए। फिर जब अल्लाह के रसूल (सल्ल०) हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) के साथ हिजरत करके मदीना जाते हुए सबसे पहले क़ुबा में पहुंचे तो हज़रत उमर (रज़ि०) उन लोगों में से थे, जिन्होंने आपका स्वागत किया, फिर साथ ही मदीना भी गए।

मदीना में

इतिहास में वह दिन अमर हो गया है, जब मक्का के कुरैशियों के अत्याचारों और दमन-चक्र से तंग आकर वहाँ के मुसलमान मदीना के शरणार्थी बने। ये शरणार्थी बेघर बार थे, बेधन-दौलत थे, अपना सब कुछ छोड़कर, त्याग कर जो आए थे, मगर वाह रे! इस्लाम का रिश्ता-नाता, मदीनावासी मुसलमानों ने दिल खोलकर उनका स्वागत किया, उन्हें किसी भी प्रकार के परायेपन का एहसास न होने दिया, न मन में किसी प्रकार के भेद-भाव और पक्षपात को जगह बनाने दिया।

फिर इतिहास का वह दिन कितना शुभ था जब पैग़म्बरे इस्लाम हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने मक्का-परित्याग करने वाले मुहाजिरों और मदीनावासी मुसलमानों को बुलाया, उन पर इस्लाम की श्रेष्ठता व महानता स्पष्ट की और इस्लाम के सैद्धान्तिक रिश्ते को ख़ूनी रिश्ते से भी श्रेष्ठ सिद्ध कर दिया और उनमें से हरेक को अलग-अलग एक-दूसरे का भाई बना दिया। इस तरह जो मुहाजिर (मक्का-परित्याग कर आने वाले मुसलमान) जिस अन्सारी (मदीना वासी मुसलमान) का भाई बन गया, उसका प्रभाव यह हुआ कि अन्सारी ने उसको अपनी जायदाद, माल-असबाब, नक़दी आदि तमाम चीज़ों में से आधा-आधा बांट कर दे दिया। इस प्रकार हज़रत उमर (रज़ि०) के इस्लामी भाई उत्बान इब्न मालिक बनाए गए, जो बनी सालिम क़बीले के सरदार थे।

मक्का-परित्याग के बाद मदीना ही में मुसलमानों को कुछ सुख-चैन नसीब हुआ था। वहाँ तो जान-माल, इज़्ज़त आबरू सभी ख़तरे में थी। मदीना में उनकी शक्ति एक जगह जमा हो गई और मदीना के दो बड़े क़बीले औस व ख़ज़रज के इस्लाम क़ुबूल कर लेने के कारण मुसलमानों का मदीना पर आधिपत्य भी हो गया, मानो एक छोटे-से राज्य की नींव पड़ गई। वहाँ अब न मक्का जैसा आतंक था, न किसी प्रकार का डर-भय।

इस्लाम में नमाज़ की हैसियत स्तम्भ की-सी है, लेकिन मक्का में एक-एक व्यक्ति का अलग-अलग नमाज़ पढ़ना भी जोखिम का काम था, प्राणों से हाथ धोना था, पर मदीना में जब अपनी ही सत्ता थी, समूह व जत्था बन कर नमाज़ पढ़ने का महत्व तेज़ी से महसूस किया जाने लगा। समस्या थी लोगों को सामूहिक नमाज़ के लिए जमा करने की। लोगों को जमा करने और ऐलान करने का अब तक ज्ञात तरीक़ा पसन्द नहीं आ रहा था। यहूदियों और ईसाइयों के यहाँ इबादत के लिए बिगुल और घण्टा बजाने की रस्म थी, इसलिए जब यह समस्या सामने आई तो कुछ लोगों ने यही राय दी, पर प्यारे नबी (सल्ल०) कोई फ़ैसला नहीं कर पा रहे थे। इतने में हज़रत उमर (रज़ि०) आ निकले, सूझ-बूझ के व्यक्ति थे ही, तुरन्त एक तरीक़ा समझ में आया, झट बोल पड़े :—

'एक आदमी ऐलान करने के लिए क्यों न नियुक्त कर दिया जाए?'

बुलाने और ऐलान करने का यह नया तरीक़ा लोगों की समझ में फ़ौरन आ गया। बोल नियत कर दिए गए और प्यारे नबी (सल्ल०) ने उसी समय हज़रत बिलाल से कहा कि 'अज़ान' दें— अज़ान के सुगठित और अर्थपूर्ण बोल उसी समय से चल पड़े और 1400 वर्ष से ज़्यादा बीत रहे हैं कि ये बोल बराबर उसी ढंग से दिन

में पाँच बार हर मस्जिद से दुहराए जाते हैं और पास-पड़ोस और मुहल्ले के लोग उसी से यह जान जाते हैं कि फ़लाँ नमाज़ का वक़्त हो गया।

पैग़म्बर-काल में हज़रत उमर (रज़ि०)

मदीना पहुंचने से लेकर पैग़म्बरे इस्लाम की मौत तक शायद ही कोई घटना ऐसी हो, चाहे शासन-व्यवस्था की बात हो या राजनीतिक समस्या, समाज-सुधार की बात हो या आर्थिक समस्या, धर्म-प्रचार की बात हो या धर्म-विरोधियों से निबटने की समस्या, लड़ाई की बात हो या समझौता वार्ता, इनमें से शायद ही कोई मौक़ा हो जिसमें हज़रत उमर (रज़ि०) की राय न माँगी गई हो और उनसे परामर्श न लिया गया हो। इसलिए कि हज़रत उमर (रज़ि०) अपनी विशेषताओं, अपने गुणों और अपने कारनामों के कारण पूरे मुसलमानों में एक विशिष्ट स्थान रखते थे, स्पष्ट ही इस महान व्यक्तित्व से आँखें नहीं चुराई जा सकती थीं।

बद्र की लड़ाई का मौक़ा था। मुसलमानों की सेना में 399 सेनानी और शत्रुओं की सेना में नौ सौ पचास व्यक्ति थे। यह इस्लाम और कुफ़्र की पहली लड़ाई थी। मुहाजिरों को अपना घर-बार छूटने का ग़म अभी ताज़ा था। उनके इस्लाम-विरोधी नातेदार व रिश्तेदार ही विरोधी कैम्प की ओर से मुसलमानों से लड़ने आए थे। उनके प्रति मोह और रहम का पैदा हो जाना स्वाभाविक था, पर हज़रत उमर (रज़ि०) जैसा कट्टर सिद्धान्तवादी और निर्भीक व्यक्ति इसे कैसे सहन कर सकता था। उन्होंने लड़ाई में बढ़कर सबसे पहले मामा आसी इब्न हिशाम ही का सिर काट लिया। स्पष्ट है औरों में भी साहस बढ़ा और फिर मोह और रहम को किसी ने राह नहीं दी। धर्म और कर्त्तव्य से नातेदारी हुई और पारिवारिक प्रेम को परास्त होना पड़ा।

इस लड़ाई में शत्रु सेना के बहुत-से लोग गिरफ़्तार कर लिए गए थे। इनकी संख्या लगभग 90 थी और इनमें से अधिकतर तो कुरैश के बड़े-बड़े सरदार ही थे। इन सरदारों का इस अपमान व रुसवाई के साथ, पराजय की कालिख लगाए, पकड़ लिया जाना अपनी जगह पर बड़ी शिक्षाएँ रखता है। पर सच तो यह है कि अपने लोगों का इस अवस्था में पहुंच जाना मुहाजिरों के लिए रोमांचकारी भी था और हृदयविदारक भी। पर सिद्धान्तवादी हज़रत उमर (रज़ि०) कभी कर्तव्य पर प्रेम की विजय पसन्द नहीं करते थे। उन्होंने बड़े निर्भीक भाव से परामर्श दिया कि 'इनमें से सबको क़त्ल कर दिया जाना चाहिए और बात तो उस समय बने जब हम में का हर व्यक्ति अपने नातेदार को क़त्ल करे। अली, अक़ील (भाई) की गरदन मार दें, हमज़ा, अब्बास (भाई) का सिर उड़ा दें, और अमुक व्यक्ति मेरा नातेदार है, उसका काम मैं तमाम कर दूँ।'

यद्यपि हज़रत उमर (रज़ि०) का यह सुझाव प्यारे नबी को जंचा नहीं, मगर इससे उनके स्वाभाविक व सहज गुणों को अवश्य देखा जा सकता है।

मक्का में कुरैश के लोग इस्लाम के शत्रु थे ही, पर मदीना में यहूदियों के जो क़बीले आबाद थे, वे भी सब किसी आस्तीन के सांप से कम नहीं थे, वे युद्ध कला में भी पारंगत थे। अतएव बद्र की लड़ाई में जब कुरैश बुरी तरह पराजित हुए तो यही यहूदी उन्हें ताना देते हुए कहा करते कि कुरैश लड़ना क्या जानें, हम से मामला पड़े तो इनके दाँत खट्टे हों।

यद्यपि मदीना पहुंचने के बाद प्यारे नबी (सल्ल०) ने राजनीतिक स्तर पर सबसे पहले यहूदियों से समझौता किया कि मुसलमानों के विरोधियों की मदद न करेंगे और अगर कोई शत्रु मदीना पर हमलावर हुआ तो मुसलमानों की सहायता करेंगे। मगर

बद्र की लड़ाई में मुसलमानों की विजय से उन्हें भय हुआ कि अगर मुसलमान ज़ोर पकड़ गए तो हमारी भी ख़ैरियत नहीं, इसलिए उन्होंने समझौते का विचार किए बिना ऐसी चालें चलने लगे और साज़िश करनी शुरू कर दी, जो खुली बग़ावत और इस्लामी राज्य के प्रति शत्रुता का प्रदर्शन था।

उधर बद्र की लड़ाई में क़ुरैश परास्त हुए थे, वे भी बौखलाए हुए थे और बदला लेने की तैयारी में लगे हुए थे। यहूदियों से सांठ-गांठ करके उन्होंने एक बार और मदीना पर धावा बोल दिया। उहुद के मैदान में दोनों ओर सेनाएं इकट्ठी हुईं। घमासान लड़ाई शुरू हो गई। पहले मुसलमान जीत रहे थे, फिर पांसा पलट गया। अफ़वाह फैल गई, प्यारे नबी (सल्ल०) शहीद कर दिए गए। इस अफ़वाह ने मुसलमानों में कई प्रतिक्रयाएं पैदा कीं। एक ख़ेमा सोचने लगा, जब रसूल (सल्ल०) ही न रहे, तो सब बेकार। हज़रत उमर (रज़ि०) भी उन्हीं लोगों में से थे। रसूल (सल्ल०) से अति प्रेम का ही यह नतीजा था। भावुक थे ही, प्रेम के साथ भावुकता इकट्ठी हो जाए तो उसका यही अंजाम होना भी चाहिए। यही कारण है कि जैसे ही उन्हें यह सूचना मिली कि प्यारे रसूल (सल्ल०) जीवित हैं, वे तुरन्त आपके पास दौड़े आए। फिर आपके दर्शन करने के बाद ही उन्हें चैन आया।

यहूदियों की साजिश का ज़िक्र किया जा चुका है। यहूदियों के एक क़बीले बनू क़ैनक़ाअ ने बद्र की लड़ाई के बाद ही से हाथ-पांव फैलाने शुरू कर दिए थे। स्पष्ट है समझौते का भंग किया जाना किसी भी राज्य के लिए असह्य होता है। उन्हें इस जुर्म में मदीना से निकाल दिया गया।

यहूदियों का दूसरा क़बीला बनू नज़ीर का था। इनकी भी वही रीति-नीति थी। इस्लाम और मुसलमानों के विरोध में उन्होंने कोई

कसर नहीं उठा रखी थी। साजिश करने में वे बड़ी सरगर्मी दिखा रहे थे। स्पष्ट है उनकी ये गतिविधियाँ भी नहीं सहन की जा सकती थीं। इन यहूदियों की साज़िश का हाल यह था कि एक बार प्यारे नबी (सल्ल०), हज़रत उमर (रज़ि०) और हज़रत अबूबक्र के साथ कुछ बातचीत करने के लिए मुहल्ले में गए। इन लोगों ने अम्र इब्न हिजाश नामी एक व्यक्ति को इस पर तैयार किया कि वह छत पर चढ़कर आपके सिर पर पत्थर की सिल गिरा दे। वह छत पर चढ़ चुका था कि आपको ख़बर हो गई। आप (सल्ल०) उठकर चले आए।

जब इनकी गतिविधियाँ इस हद को पहुंच गईं तो आपको कहलाना ही पड़ा कि अब समझौता ख़त्म हो गया है, इसलिए तुम लोग मदीना से निकल जाओ। यह आदेश यहूदियों की उत्तेजना के लिए काफ़ी था। उन्होंने निकलने से इन्कार कर दिया और मुक़ाबले की तैयारियां शुरू कर दीं, लेकिन यह मुक़ाबला उनके कोई काम न आ सका। मुसलमानों ने जल्द ही उन पर क़ाबू पा लिया और उन्हें मदीना से निकाल दिया गया। इनमें से कुछ तो सीरिया की ओर चले गए और कुछ ख़ैबर में आबाद हो गए और वहां जाकर अपना आधिपत्य जमा लिया।

ख़ैबर पहुंच कर उन्होंने इत्मीनान की सांस ली। वहाँ जब उनके पैर जम गए, तो प्यारे नबी (सल्ल०) और मुसलमानों से बदला लेने के बारे में सोचना शुरू कर दिया। सबसे पहले मक्का पहुंचे। वहां इस्लाम विरोधी क़ुरैश को उत्तेजना दिलाई, मुसलमानों के ख़िलाफ़ भड़काया, मिलकर इस्लाम के नए राज्य की जड़ काटने की बात कही। इसके बाद अरब के अन्य क़बीलों का दौरा किया और उन्हें भी उकसाया। इस प्रकार दौड़-धूप करके पूरे अरब में एक ऐसा माहौल पैदा कर दिया जो मुसलमानों को तबाह करने पर तुल गया। फिर अरब प्रायद्वीप के क़बीलों की एक संयुक्त

सेना तैयार हो गई। इस सेना में लगभग दस हज़ार सैनिक थे जो सन् 6 हिजरी के ईद के महीने में मदीना की तरफ़ आंधी-तूफान की तरह बढ़ने शुरू हुए।

प्यारे नबी (सल्ल०) को इस पूरी स्थिति की सूचना बराबर मिलती रही। जब सेना को आगे बढ़ने और मदीना पर हमला करने की सूचना मिली तो आपने अपने साथियों से मशविरा किया। यह निश्चय किया गया कि आगे बढ़ने के बजाय मदीने के चारों ओर खाई खोदकर शत्रुओं का डट कर मुक़ाबला किया जाए। यह वह सामरिक चाल थी, जिससे उस समय तक के अरब अनभिज्ञ थे। फिर क्या था, खुदाई शुरू हो गई। एक-एक करके तमाम मुसलमान खाई खोदने में जुट गए, यहां तक कि मुसलमानों के सरदार मुहम्मद (सल्ल०) भी इस मुहिम में उस समय तक लगे रहे जब तक कि काम ख़त्म न हो गया। अरब क़बीलों की सेनाओं ने मदीना को घेर लिया। यह घेरा लगभग एक माह तक चलता रहा। शत्रु कभी-कभी खाई के पार उतरने की कोशिश करते और उतर कर हमले पर हमला करते, पर उनका यह हमला बराबर असफल किया जाता रहा, इसलिए कि नबी (सल्ल०) ने अपने श्रेष्ठतम साथियों को खाई के इधर कुछ दूरी पर नियक्त कर दिया था कि कोई इधर न आने पाए। ये साथी बड़ी मुस्तैदी से मुआइना करते रहते और शत्रु पर नज़र पड़ते ही बड़ी बहादुरी से उसका सफ़ाया कर देते।

हज़रत उमर (रज़ि०) भी इसी तरह एक हिस्से पर तैनात थे। एक दिन शत्रुओं ने हमले का इरादा किया तो हज़रत उमर ने हज़रत ज़ुबैर के साथ आगे बढ़कर उन्हें रोका और उन्हें तितर-बितर किया, एक और दिन शत्रुओं के मुक़ाबले में उन्हें इतना व्यस्त रहना पड़ा कि अस्र की नमाज़ का वक़्त ही ख़त्म होने को आ गया। आपने

प्यारे नबी (सल्ल०) के पास आकर निवेदन किया कि आज शत्रुओं ने नमाज़ तक पढ़ने का मौक़ा नहीं दिया। आपने कहा : मैंने भी अभी तक नमाज़ नहीं पढ़ी। इन घटनाओं से हज़रत उमर (रज़ि०) की वीरता, शौर्य और इस्लाम के प्रति अथाह निष्ठा का अंदाज़ा लगाया जा सकता है और यहां यह बात भी याद रखने की है कि वे ये सब कुछ सिर्फ़ इस्लाम (सैद्धांतिक जीवन-व्यवस्था) के लिए कर रहे थे, न कि किसी क़बीले, गोत्र, नस्ल आदि के हित व स्वार्थ की सुरक्षा के लिए।

हुदैबिया का समझौता

हिज़रत के छठे वर्ष प्यारे नबी (सल्ल०) ने अपने साथियों के साथ काबा की तीर्थ-यात्रा का निश्चय किया। काबा मक्का में है, जिसे सैकड़ों वर्ष पहले हज़रत इब्राहीम (अैल०) और उनके बेटे हज़रत इस्माईल (अलै०) ने तौहीदपरस्तों (ऐकेश्वरवादियों) के लिए तैयार किया था, ताकि वे अल्लाह की इबादत व बन्दगी कर सकें। काबा की परिक्रमा के निश्चय से मक्कावासी इस्लाम विरोधियों को भ्रम हो सकता था कि यह निश्चय मक्का पर चढ़ाई का बहाना तो नहीं है। इस भ्रम से बचाने के लिए आपने यह भी हुक्म दिया कि कोई व्यक्ति हथियार बाँध कर न चले।

मदीना से 6 मील की दूरी पर ज़ुलहुलैफ़ा एक जगह है। यहाँ पहुंचने पर हज़रत उमर (रज़ि०) के दिल में विचार पैदा हुआ कि इस तरह चलना उचित नहीं। अतएव वे अल्लाह के रसूल की सेवा में उपस्थित हुए, अपना सुझाव रखा। प्यारे रसूल (सल्ल०) ने उनके सुझाव के अनुसार हथियार मंगवा लिए।

जब मक्का कुछ ही दूर रह गया, तो मक्का से बशीर इब्न सुफ़ियान ने आकर यह सूचना दी कि क़ुरैश के तमाम लोगों ने

निश्चय किया है कि मुसलमानों को मक्का में क़दम न रखने देंगे। प्यारे नबी (सल्ल०) ने चाहा कि अपने वरिष्ठ सहयोगियों को दूत बनाकर मक्का भेजें, ताकि वे जाकर यह बता दें कि मुसलमान केवल तीर्थ-यात्रा के लिए आए हैं, लड़ने के लिए नहीं आए हैं। इसके लिए हज़रत उमर (रज़ि०) याद किए गए, पर हज़रत उमर (रज़ि०) ने क्षमा मांग ली। उनका कहना था, कुरैश मेरी जान के प्यासे हैं और मेरे वंश में वहाँ मेरा कोई समर्थक मौजूद नहीं है, फिर उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि हज़रत उस्मान (रज़ि०) को भेजना उचित होगा, इसलिए कि उनके नातेदार-रिश्तेदार वहां मौजूद हैं। प्यारे नबी (सल्ल०) ने इस सुझाव को बहुत पसन्द किया।

हज़रत उस्मान (रज़ि०) को मक्का भेज दिया गया। कुरैश ने हज़रत उस्मान (रज़ि०) को रोक लिया और कई दिन तक रोके रखा। ऐसी स्थिति में मुसलमानों के दूत का रोक लिया जाना चिन्ता का एक विषय बन गया। अफ़वाह फैल गई कि हज़रत उस्मान (रज़ि०) शहीद कर दिए गए। इस अफ़वाह का फैलना था कि मुसलमानों में उत्तेजना फैल गई। 'खून का बदला खून से लेंगे' सरीखी भावनाएँ तेज़ी से जन्मीं। उस समय वहां मौजूद मुसलमानों की संख्या चौदह सौ थी। तुरन्त ही उन सबसे यह बैअत (प्रतिज्ञा) ली गई और लड़ाई की तैयारी शुरू हो गई।

किन्तु प्यारे नबी (सल्ल०) उस समय लड़ाई के लिए तो वहाँ गए नहीं थे, इसलिए बेहतर यही समझा गया कि समझौते की कोई राह निकाल ली जाए, हज़रत उस्मान (रज़ि०) भी उस समय तक वापस आ चुके थे।

समझौते में कुरैश का आग्रह था कि प्यारे नबी (सल्ल०) मक्का में हरगिज़ दाख़िल नहीं हो सकते। बहरहाल बड़ी वार्ताओं के बाद इन शर्तों पर समझौता हुआ कि इस बार मुसलमान उल्टे वापस

जाएँ और अगले साल आएँ, मगर तीन दिन से अधिक न ठहरें। समझौते में यह शर्त भी थी कि दस वर्ष तक लड़ाई न हो और इसमें अगर कुरैश का कोई आदमी अल्लाह के रसूल के यहाँ चला जाए तो अल्लाह के रसूल उसे वापस कुरैश के पास भेज दें, पर मुसलमानों में से अगर कोई व्यक्ति कुरैश के हाथ लग जाए तो, उनको अधिकार होगा कि उसे अपने पास रोक लें।

अन्तिम शर्त प्रत्यक्षतः कुछ अटपटी-सी थी और मुसलमानों के हित में नहीं थी, हज़रत उमर (रज़ि०) विकल हो उठे। अभी समझौता लिखा नहीं गया था कि वे हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) के पास पहुंचे और कहा :

'इस प्रकार दब कर क्यों समझौता किया जाए?'

उन्होंने समझाया कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) जो कुछ करते हैं, उसी में हित होगा, पर उन्हें सन्तोष न हुआ, स्वयं प्यारे नबी (सल्ल०) के पास आए और इस तरह बोले–

'हे अल्लाह के रसूल (सल्ल०)! क्या आप अल्लाह के रसूल नहीं हैं?'

'यकीनन हूँ।'

'क्या हमारे दुश्मन मुश्रिक नहीं हैं?'

'अवश्य ही हैं।'

'फिर हम अपने धर्म को क्यों अपमानित करें?'

'मैं अल्लाह का रसूल हूँ और उसके हुक्म के ख़िलाफ़ नहीं करता।'

यद्यपि भावावेश के कारण हज़रत उमर (रज़ि०) का स्वर तीखा था और बाद में इसपर बहुत लज्जित भी हुए, मगर इससे उनके भीतर की भावनाओं को पढ़ा जा सकता है।

खुली विजय

हुदैबिया में मुसलमानों और कुरैश में जो समझौता हुआ था, और जिसके बारे में हज़रत उमर (रज़ि०) तक का यह विचार था कि यह मुसलमानों के हक़ में बुरा हुआ, उसी समझौते के बारे में कुरआन में यह आयत आई :-

'हमने तुम को खुली विजय प्रदान की है।'

बाद के हालात ने सही साबित कर दिया कि अल्लाह की यह वाणी शत-प्रतिशत सही थी। यह विजय जिन-जिन शक्लों में प्राप्त हुई, उसे निम्न पंक्तियों से समझा जा सकता है:-

1. मुसलमानों और मुशरिकों में संघर्ष व लड़ाई छिड़ी रहने के कारण स्थिति ऐसी पैदा हो गई थी कि दोनों तरफ़ वालों को एक दूसरे से मिलने का कोई मौक़ा न मिलता था। इस समझौते ने इस स्थिति को ख़त्म कर दिया और मुस्लिम और ग़ैर-मुस्लिम एक दूसरे से मिलने लगे। ग़ैर-मुस्लिम बिना किसी झिझक के मदीना आते और महीनों वहां रहते। वे देखते कि जिन लोगों के विरुद्ध उनके मन में द्वेष व वैमनस्य समाया हुआ है, वे चरित्र के श्रेष्ठ, आचरण के अनुकरणीय, व्यवहार के खरे और विचार के शुद्ध हैं। वे देखते कि जिससे हमने लड़ाई मोल ले रखी है, उनके मन में ग़ैर-मुस्लिमों के प्रति कोई कपट व घृणा नहीं है, बल्कि उन्हें जिससे घृणा है, वह उनके अशुद्ध विचार और ग़लत रस्म व रिवाज हैं। वे देखते, हम तो इनके ख़िलाफ़ इतना प्रोपगन्डा करते हैं, पर ये हमारे साथ अच्छा व्यवहार करते हैं– भाई-चारे का व्यवहार, सहानुभूति का व्यवहार, मानवता का व्यवहार– तो वे प्रभावित हुए बिना न रहते और सोचते, ये कैसे लोग हैं और ऐसा इन्हें किस चीज़ ने बना दिया है?

2. फिर इस तरह मिलने-जुलने से ग़ैर-मुस्लिम के ज़ेहन में इस्लाम के प्रति जो ग़लतफ़हमियाँ थीं, और उनको जो आपत्तियां थीं

उनके बारे में भी आपस में खूब बातचीत का मौका मिलने लगा, जिससे इस्लाम का विशुद्ध रूप जब उनके सामने आया, तो उनकी आँखें खुल गईं और वे सोचने लगे कि हम इस्लाम के बारे में कितने धोखे में डाल दिए गए थे, हम अंधेरे में थे और हमें रोशनी से महरूम कर दिया गया था। इसका नतीजा यह हुआ कि उनका मन इस्लाम की ओर खिंच उठा और वे मुसलमान होने लगे। यही कारण है कि इस समझौते के बाद केवल डेढ़-दो साल में इतने लोगों ने इस्लाम कुबूल किया कि इससे पहले इतनी बड़ी तायदाद में इस्लाम कुबूल नहीं किया गया था।

3. हुदैबिया के समझौते के बाद जब असल शत्रु ठंडे पड़ गए तो प्यारे नबी (सल्ल०) को इसका अवसर मिला कि वे इस्लाम का प्रचार अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कर सकें। इसी भावना के तहत आपने बड़े-बड़े राजाओं, महाराजाओं, बादशाहों, जागीरदारों और धनी-मानी व्यक्तियों को इस्लाम का परिचय कराने के लिए अनेक पत्र लिखे, प्रतिनिधि मंडल भेजीं। इस प्रकार इस्लाम का प्रचार अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शुरू हो गया।

इन बातों को सामने रख कर यह कहा जा सकता है कि हुदैबिया का समझौता 'इस्लाम की खुली विजय' था, पर यह बात शुरू में हज़रत उमर (रज़ि०) न समझ सके और भावुकता में पड़ गए।

यहूदियों और खाई की लड़ाई की ख़बर आप पढ़ ही चुके हैं कि यहूदी कबीला बनू नज़ीर अपनी शरारतों, साजिशों और बदगुमानियों के कारण मदीना से निकाल दिया गया था और ये यहूदी ख़ैबर में जाकर आबाद हो गए थे। वहीं से इन लोगों ने साज़िश रच कर अरब के बहुत-से कबीलों को लड़ाई पर तैयार करा लिया था, इन कबीलों की सेनाओं ने मदीना पर धावा बोल

दिया था, मगर उन्हें पराजय का मुंह देखना पड़ा था। इसके बाद भी वे अपनी साज़िशों से बाज़ नहीं आए। बदला लेने के उपाय ढूंढते रहे।

छठे साल बनू सअद क़बीले ने यहूदियों से सहायता की हामी भर ली। प्यारे नबी (सल्ल०) को जब मालूम हुआ तो उसकी सरकोबी के लिए हज़रत अली (रज़ि०) को भेजा। मुस्लिम योद्धाओं को देखकर बनू सअद भाग गए। वे अपने पांच सौ ऊंट भी छोड़ गए।

यहूदियों की साज़िश जारी रही। यहूदियों से निपटने के लिए ज़रूरी था कि उन्हें इसका मज़ा चखाया जाए। आप अपनी सेनाओं को लेकर ख़ैबर की ओर बढ़े। आपके साथ 1400 पैदल और 200 सवार थे। जब आप ख़ैबर की ओर बढ़े तो सबसे पहले ग़तफ़ान क़बीले ने अवरोध पैदा करना चाहा। उनसे निबट लिया गया।

ख़ैबर में यहूदियों ने बड़े-बड़े क़िले बना लिए थे। इन सब पर जल्द-से-जल्द विजय पा ली गई। पर अरब के महान् योद्धा मरहब वाले क़िले पर विजय पाना कठिन हो रहा था। आपने हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) को सेनापति बना कर भेजा, पर वे असफल रहे। आपने यह देखकर फ़रमाया, 'कल मैं ऐसे व्यक्ति को झंडा दूंगा, जो हमलावर होगा।' अगले दिन तमाम वरिष्ठ साथी झंडा पाने की उम्मीद में अस्त्रों से सुसज्जित होकर आए। इनमें हज़रत उमर (रज़ि०) भी थे और उनका ख़ुद का बयान है कि मैंने कभी इस मौक़े के अलावा सेनापतित्व की कामना नहीं की थी। यह प्यारे नबी (सल्ल०) से अगाध प्रेम व श्रद्धा का एक अपूर्व उदाहरण है कि नबी का झंडा पाने के लिए अपनी जान भी हथेली पर रखना कोई कठिन काम न समझते।

बहरहाल सेनापतित्व का पद हज़रत अली (रज़ि०) को मिला

और मरहब हज़रत अली (रज़ि०) ही के हाथों मारा गया और इसी के साथ यह लड़ाई ख़त्म हो गई। ख़ैबर की ज़मीन सेनानियों में बांट दी गई। एक टुकड़ा हज़रत उमर (रज़ि०) के हिस्से में भी आया। हज़रत उमर (रज़ि०) ने उसे अल्लाह की राह में वक़्फ़ कर दिया। त्याग का यह उदाहरण पहली बार सामने आया और इसका श्रेय हज़रत उमर (रज़ि०) ही को मिला।

मक्का-विजय

हुदैबिया के समझौते के अनुसार कुछ क़बीलों ने मक्का वालों का साथ दिया था और कुछ मुसलमानों के साथ थे। इसमें ख़ुज़ाआ क़बीला मुसलमानों के साथ हो गया था और क़बीला बनी बिक्र वाले क़ुरैश से मिल गए। ख़ुज़ाआ और बनी बिक्र में वर्षों से लड़ाइयाँ ठनी हुई थीं। बीच में कुछ वर्षों तक दोनों क़बीले कुछ शान्त रहे। पर इधर फिर बनूबिक्र ने ख़ुज़ाआ पर धावा बोल दिया और फिर यह कि ख़ुज़ाआ के ख़िलाफ़ बनूबिक्र की क़ुरैश ने मदद भी की, क्योंकि वे पहले ही इस बात पर ख़ुज़ाआ से नाराज़ थे कि उन्होंने क़ुरैश की इच्छा के विरुद्ध मुसलमानों से क्यों समझौता कर लिया है। अतः यह कि दोनों ने मिल कर ख़ुज़ाआ के क़बीले के लोगों को क़त्ल करना शुरू कर दिया, यहाँ तक कि जब उन्होंने काबा में शरण लिया, तो वहाँ भी उनको न छोड़ा और उनका ख़ून बहाया।

क़ुरैश का इस तरह मुसलमानों के साथी व मित्र क़बीले के ख़िलाफ़ तलवार उठाने का अर्थ ही यह था कि इन लोगों ने हुदैबिया समझौते की शर्तों पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया है। हुज़ूर (सल्ल०) को जब यह सूचना मिली तो तुरन्त आपने एक दूत भेजा कि वे ऐसा करने से रुकें और इन तीनों शर्तों में से किसी एक को स्वीकार करें :—

1. ख़ुज़ाआ के जो लोग मारे गए हैं, उनका ख़ून बहा दिया

जाए, या

2. बनू बिक्र की सहायता न की जाए, या

3. इसका ऐलान किया जाए कि हुदैबिया का समझौता भंग कर दिया गया।

कुरैश के सरदारों ने कुरैश की ओर से तीसरी बात स्वीकार कर ली। मगर दूत के वापस हो जाने के बाद वे बहुत पछताए और अबूसुफ़यान को अपना दूत बनाकर मदीना भेजा कि हुदैबिया के समझौते को बहाल किया जाए, लेकिन हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) को जो सूचनाएँ मिली थीं और कुरैश के अब तक के रवैये को सामने रखते हुए आप (सल्ल०) को इत्मीनान न हुआ और आपने अबूसुफ़यान की बात मानने से साफ़ इन्कार कर दिया। वह उठकर हज़रत अबूबक्र और हज़रत उमर (रज़ि०) के पास गया कि आप इस मामले को तय करा दें। हज़रत उमर (रज़ि०) ने इस सख़्ती से जवाब दिया कि वह बिल्कुल निराश हो गया।

फिर आपने मक्का पर हमला करने की तैयारी शुरू कर दी और इस बात का ध्यान रखा कि मक्का वालों को पता न लगे। 10 रमज़ान को दस हज़ार की सेना मक्का की ओर बढ़ी और मक्का नगर से कुछ दूरी पर रात को पड़ाव डाल दिया। कुरैश को इसकी ख़बर न थी।

इस्लामी सेना जब मक्का के पास पहुंची तो अबू सुफ़यान, जो छिप कर सेना का अन्दाज़ा लगा रहे थे, गिरफ़्तार करके आप की सेवा में लाए गए। यह वही अबू सुफ़यान थे जो अब तक इस्लाम के विरोध में सबसे आगे थे, उन्होंने ही मदीना पर बार-बार हमले की योजनाएं बनाई थीं, यहां तक कि आप को क़त्ल करने की ख़ुफ़िया चाल भी चल बैठे थे। ये तमाम बातें ऐसी थीं कि अबू सुफ़यान को तुरन्त क़त्ल करा देना चाहिए था, लेकिन आपने नम्रता का ही

व्यवहार किया और कहा :–

'जाओ, आज तुम से कोई पूछ-ताछ न होगी। ईश्वर तुम्हें क्षमा करे और वह तमाम दयालुओं से बढ़कर दयालु है।'

अबू सुफ़ियान के साथ यह मामला बिल्कुल ही अनूठा मामला था, एक ऐसा मामला जिसे न, आसमान ने देखा, न ज़मीन ने। पत्थर-से-पत्थर दिल भी इस व्यवहार से न पसीजेगा तो क्या होगा? अबू सुफ़ियान का मन भी फट पड़ा सत्य की इस करारी विजय पर और वे मक्का वापस जाने के बजाय वहीं मुसलमान हो गए। क्या इस्लाम की सत्यता पर अब भी कोई आशंका कर सकता है? कैसा सत्य-धर्म है, यह इस्लाम?

फिर हज़रत अब्बास (रज़ि०) को आज्ञा हुई कि अबू सुफ़ियान को पहाड़ की चोटी पर ले जाकर ज़रा इस्लामी सेना का दृश्य दिखाएं। थोड़ी देर बाद इस्लामी सेना जोश भरती हुई आगे बढ़ी। सबसे पहली टुकड़ी ग़िफ़ार क़बीले की थी, फिर जुहैनिया हुजैम और सुलैम क़बीले हथियारों से लैस, 'अल्लाहु अकबर' का नारा लगाते हुए आगे निकल गए। अबू सुफ़ियान हर बार डर जाते। फिर अन्सार की टुकड़ी पूरे सज-धज से गुज़री कि पहाड़ी गूंज गई उनके नारों से। सबसे अन्त में हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) दिखाई दिए।

मक्का में बिना किसी बाधा के आपकी पूरी सेना दाख़िल हो गई। उसी समय आपने ऐलान कर दिया कि :–

1. जो कोई अपने मकान के भीतर किवाड़ बन्द करके बैठे रहे, उसे छोड़ दिया जाए।

2. जो कोई अबू सुफ़ियान के मकान में चला जाए, उसे भी छोड़ दिया जाए।

3. जो कोई काबा में छिपना चाहे, उसे भी छोड़ दिया जाए।

मगर इस शरण के ऐलान में ऐसे छः सात व्यक्ति अपवाद थे,

जो इस्लाम के विरोध में आगे-आगे थे और जिनका क़त्ल कर देना ही ज़रूरी था।

हुज़ूर (सल्ल०) ने जब काबा में प्रवेश किया तो सबसे पहले आपका यही हुक्म था कि तमाम मूर्तियां निकाल कर फेंक दी जाएँ, वे मूर्तियां जो अनेकेश्वरवाद का परिचय करा रही थीं, वे मूर्तियां जिनकी मौजूदगी एक ईश्वर के वजूद को चैलेंज कर रही थीं— हां, इन्हीं मूर्तियों, बेजान मूर्तियों, पत्थर की निष्प्राण मूर्तियों को फेंक कर काबा को पवित्र करने का हुक्म दिया गया, इसलिए कि काबा की बुनियाद एकेश्वरवादियों ने रखी थी और इसलिए भी कि वह एक 'ईश्वर' का 'घर' था। इसके बाद नारे लगे, काबा की परिक्रमा की गई और वहीं नमाज़ पढ़ी गई।

यह थी मक्का-विजय और उसका उत्सव, न बाजा-गाजा है, न हुल्लड़बाज़ी, न रंग रलियाँ हैं, न लूटमार, न क़त्ल व ग़ारत है, न शान-शौकत, न ही दम्भ व अभिमान की बातें हैं, हां, उनके सामने हर समय उनका अपना ध्येय है, अपने अल्लाह के प्रति कृतज्ञता-प्रकाशन है, विनम्रता है, सहृदयता है और है एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति।

मक्का में दाख़िले होने के बाद आप (सल्ल०) बैअत (इस्लाम की राह पर चलने की प्रतिज्ञा) के लिए, हज़रत उमर (रज़ि०) को साथ लेकर सुनआ नामक स्थान पर गए। वहां भारी संख्या में लोगों ने बैअत ली। हज़रत उमर (रज़ि०) को औरतों की बैअत पर नियुक्त कर दिया गया और वे औरतों की बैअत लेने लगे।

स्वाभाविक था कि इस मक्का-विजाय पर मुसलमान प्रसन्न होते, खुशियां मनाते। अभी ये खुशियां मनाई जा रही थीं कि हवाज़िन की लड़ाई की घटना घटित हुई। हवाज़िन अरब का प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित क़बीला था। ये लोग शुरू ही से इस्लाम को

फलता-फूलता नहीं देखना चाहते थे।

प्यारे नबी (सल्ल०) जब मक्का-विजय के इरादे से मदीना से अपनी सेना लेकर चले थे, तभी इन लोगों ने समझा था कि शायद हम पर ये हमला करना चाहते हैं बस फिर क्या था, लड़ाइयों की तैयारियां शुरू हो गईं और जब यह मालूम हुआ कि प्यारे नबी सल्ल० विजयी होकर मक्का में दाख़िल हो गए हैं, तो मक्का ही पर धावा बोल देने के लिए पूरे अस्त्र-शस्त्र के साथ हुनैन तक आए और वहीं डेरे डाल दिए। हुनैन मक्का से लगभग मिली हुई घाटी का नाम है।

आपको जब मालूम हुआ तो बारह सौ की सेना के साथ मक्का से चले। हुनैन में दोनों सेनाएं भिड़ गईं, लड़ाई शुरू हो गई। शुरू में मुसलमानों ही का पलड़ा भारी था, हवाज़िन ने हिम्मत हार दी थी, पर धन-दौलत के लोभ और लालच ने मुसलमानों को ग़नीमत का माल बटोरने में व्यस्त कर दिया, इतने में हवाज़िन संभल चुके थे। उन्होंने तीरों की बारिश शुरू कर दी। मुसलमानों में भगदड़ मच गई। कुछ ही मुसलमान थे जो इस आज़माइश में खरे उतरे, इनमें हज़रत उमर (रज़ि०) भी एक थे, जिन्होंने अपने धैर्य और पराक्रम का श्रेष्ठ प्रमाण जुटा दिया।

लड़ाई में उतार-चढ़ाव होता ही है। धैर्यवान मुस्लिम योद्धाओं को मुक़ाबले पर जमा देख कर शेष मुसलमानों का धैर्य बंधा। मुसलमान संभल गए। फिर क्या था, जम कर लड़ाई हुई। इस बार फिर पांसा पलटा और अब मुसलमान विजयी हो गए।

इस लड़ाई में हवाज़िन के 6100 लोग गिरफ़्तार हुए।

हिजरत के नवें साल यह ख़बर मशहूर हुई कि रूमी साम्राज्य अरब पर हमले की तैयारियां कर रहा है। ऐसी सूचना मिलते ही प्यारे नबी सल्ल० ने भी मुसलमानों को तैयारी का हुक्म दे दिया।

और चूंकि यह काफ़ी तंगी का ज़माना था, इसलिए लोगों को धन-दौलत, अस्त्रो-शस्त्रों द्वारा सहायता करने पर उभारा गया। ज़्यादातर साथियों ने इस सहायता में दिल खोलकर हिस्सा लिया। उनमें से हज़रत उमर (रज़ि०) भी एक थे, जिन्होंने अपने तमाम सामानों में से आधा लाकर प्यारे नबी (सल्ल०) के क़दमों में डाल दिया। यह था उनका त्याग और इस्लाम को आगे बढ़ाने की अमूल्य भावना।

यही साल था जब प्यारे नबी (सल्ल०) अपनी पत्नियों से रुष्ट हो कर अलग हो गए थे और चूंकि लोगों को इस कार्य से यह गुमान हो गया था कि आपने अपनी तमाम पत्नियों को तलाक़ दे दी है, इसलिए तमाम साथियों को इसका बड़ा दुख था। फिर भी किसी व्यक्ति को यह साहस नहीं हो पा रहा था कि आप की सेवा में कुछ कहने-सुनने का साहस बटोर पाता।

हज़रत उमर (रज़ि०) ने सेवा में उपस्थित होने की बार-बार इजाज़त चाही, पर मिल न सकी। अन्त में हज़रत उमर (रज़ि०) ने पुकार कर कहा :—

'शायद अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का यह विचार है कि मैं हफ़्सा (हज़रत उमर की बेटी और प्यारे नबी की धर्म-पत्नी) की सिफ़ारिश के लिए आया हूं। खुदा की क़सम! अगर आप इजाज़त दें तो मैं जाकर हफ़्सा की गर्दन मार दूं।'

ऐसा सुनते ही प्यारे नबी (सल्ल०) ने तुरन्त भीतर बुला लिया। हज़रत उमर (रज़ि०) ने पूछा—

'क्या आपने पत्नियों को तलाक़ दे दी?'

'नहीं,' आपने फ़र्माया।

'तमाम मुसलमान मस्जिद में शोकाकुल बैठे हैं।' हज़रत उमर ने कहा, 'कहिए तो उन्हें जाकर यह खुशखबरी सुना दूं?'

इस घटना से हज़रत उमर (रज़ि०) के प्यारे नबी (सल्ल०) से क़रीब होने का अन्दाज़ा लगाया जा सकता है और इसी से उनके पद व स्थान का अनुमान भी लगाया जा सकता है।

दसवें वर्ष प्यारे नबी (सल्ल०) ने अन्तिम हज किया। इसमें हज़रत उमर (रज़ि०) भी शरीक थे। यह वही हज था जिसमें आपने ऐतिहासिक वक्तव्य दिया था और फ़रमाया था–

'अरब को ग़ैर-अरब पर और ग़ैर-अरब को अरब पर कोई श्रेष्ठता प्राप्त नहीं। तुम सब आदम की औलाद हो और आदम मिट्टी से पैदा हुए थे।

'औरतों के मामले में अल्लाह से डरो। तुम्हारा औरतों पर और औरतों का तुम पर अधिकार है।'

'मैं तुममें एक चीज़ छोड़ जाता हूं। अगर तुमने उसे मज़बूती से पकड़ लिया तो गुमराह न होगे और वह है– अल्लाह की किताब यानी क़ुरआन।'

इसके बाद प्यारे नबी (सल्ल०) बीमार हुए और इसी बीमारी में आपकी मौत हो गई।

हज़रत अबूबक्र ख़लीफ़ा बने

कैसी थी वह नाज़ुक घड़ी, अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की मृत्यु हो गई है, पूरे राज्य में शोक की लहर दौड़ गई है। रसूल की एक-एक अदा पर कुर्बान हो जाने वाले परवाने रसूल (सल्ल०) की मृत्यु पर चकित होकर रह गए हैं। कुछ तो यह कहने लगे हैं कि रसूल (सल्ल०) मरे भी या नहीं, यहां तक कि हज़रत उमर (रज़ि०) जैसे योद्धा व नेता नंगी तलवार लेकर दरवाज़े पर खड़े हो गए हैं और चुनौती दे रहे हैं कि जिस किसी ने कहा कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की मृत्यु हो गई, उसका सिर धड़ से अलग कर दिया जाएगा। यह हज़रत उमर (रज़ि०) की प्यारे नबी (सल्ल०) से अपार श्रद्धा व प्रेम का ही परिचायक है। इसी कारण उन्हें यकीन नहीं हो पा रहा है कि रसूल (सल्ल०) की भी मृत्यु हो सकती है।

पर इस नाज़ुक घड़ी में, अपना संतुलन खोए बिना जब हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) ने अपने विशेष स्वर में पुकार-पुकार कर कहना शुरू किया—

'अगर लोग मुहम्मद (सल्ल०) की पूजा करते थे तो इसमें शक नहीं कि वह मर गए और अगर खुदा को पूजते थे तो इसमें शक नहीं कि वह ज़िंदा है और कभी भी न मरेगा। अल्लाह का कथन है कि, 'मुहम्मद अल्लाह के रसूल हैं। इनसे पहले (ऐसे ही) बहुत से रसूल गुज़र चुके हैं।'

हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) ने अपनी यह बात कुछ इस प्रकार रखी कि लोग प्रभावित हुए बिना न रहे, ख़ासतौर पर उन्होंने जो

आयत पढ़ी वह कुछ ऐसी जगह पर फिट कर दी थी कि हज़रत उमर (रज़ि०) के बेटे हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) के कहने के मुताबिक हमें तो ऐसा जान पड़ा मानो यह आयत कभी उतरी ही न थी और आज ही उतरी है।

अभी हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) का कफ़न-दफ़न भी न हो सका था, हर ओर शोक की लहर दौड़ रही थी, मुहाजिर और दूसरे मुसलमान मस्जिदे नबवी में जमा थे कि एक व्यक्ति ने आकर बताया कि अन्सार (मदीनावासी) बनू साइदा परिवार के मकान में ख़िलाफ़त (राज्य-संचालन) की समस्याओं पर बातचीत करने और अपने में से ही किसी को ख़लीफ़ा (राज्य-संचालक) बनाने के लिए इकट्ठा हो रहे हैं।

सच पूछिए तो यह मुनाफ़िकों (कपटाचारियों) की ऐसी ज़ोरदार साज़िश थी कि इस्लाम की साख ख़त्म हो जाती, इस्लामी राज्य की नींव खुद जाती, इस्लामी जीवन-व्यवस्था तहस-नहस हो जाती और सबसे बड़ी बात यह कि पैग़म्बरे इस्लाम के पैदा होने और उनके इस्लामी आंदोलन का वह उद्देश्य ही विफल हो जाता, जिसके लिए जान व माल की कुर्बानियां तक दे दी गई थीं। कैसी घातक थी यह साज़िश।

बात यहां तक बढ़ गई थी कि मुहाज़िर और अंसार एक-दूसरे का खून-ख़राबा कर बैठते और इस्लाम के उस आदर्श की जड़ कट गई होती, जिसने मुसलमानों को एक-दूसरे का भाई बना दिया था और उनमें ऐसा प्रेम भर दिया था कि आज तक वह प्रेम देखने को नहीं मिला। वह तो अल्लाह की कृपा थी और इस्लाम के दीप को जलता रहना था कि ठीक समय पर हज़रत अबूबक्र और हज़रत उमर (रज़ि०) जैसे नेताओं को इस साज़िश का पता चल गया और इस साज़िश को ख़त्म करने के लिए दौड़ पड़े।

हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) के ऊंच-नीच समझाने के बाद भी अन्सार जो झुके तो इतना भर कि एक अमीर (प्रधान) हमारा हो और एक तुम्हारा। ज़ाहिर है यह सुझाव कभी भी स्वीकार्य न था और मौक़ा भी ऐसा न था कि उसकी कटु आलोचना की जाती और भरी सभा में दोषयुक्त वातावरण पैदा कर दिया जाता; जोड़-तोड़ की रीति डाल दी जाती; उखाड़-पछाड़ की कोशिशें की जाने लगतीं कि मन एक-दूसरे से जुटने के बजाय कटने लगते, प्रेम-भाव पैदा होने के बजाय घृणा की भावना उग्र हो उठती और वही कुछ होता, जिसे मिटाने के लिए इस्लाम आया था। पर हज़रत अबूबक्र ने ऐसे समय में भी दूरदर्शिता दिखाई और ऐसा वक्तव्य दिया कि जिसने इस्लाम की डूबती नैया को उबार लिया। जब कुछ माहौल शांत हुआ तो उन्होंने हज़रत उमर और हज़रत अबू उबैदा (रज़ि०) जैसे वरिष्ठ नेताओं की ओर संकेत करते हुए कहा कि ये लोग इस योग्य हैं कि इन्हें आप अपना नेता चुन सकते हैं। इससे इस्लामी राज्य की बुनियादें भी मज़बूत होंगी और अरबों को भी इनके नेतृत्व में चलने में कोई आपत्ति न होगी।

इस पर जब सभी राज़ी हो गए कि वक़्त की मसलहतों के तहत मुसलमानों का प्रधान कोई क़ुरैश ही हो, तो इससे पहले ही कि लोग हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) के बताए नामों पर विचार करें, हज़रत उमर (रज़ि०) ने आगे बढ़कर हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) के हाथ में हाथ दे दिया, मानो उन्होंने यह ऐलान कर दिया कि हम में सबसे बेहतर हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) हैं। फिर क्या था, ऐसे व्यक्तित्व के बारे में प्रस्ताव आते ही सर्व सम्मति से उनका नेतृत्व मान लिया गया।

फिर हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) के साथ हज़रत उमर (रज़ि०) का पूरा सहयोग आख़िर दम तक चलता रहा। अपने मूल्यवान सुझाव भी देते रहे, अपने परामर्श भी सामने लाते रहे। अगर उनका

परामर्श नहीं माना जाता तो उसे वे बड़ी उदारता से सहन कर लेते। हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) के समय ही की घटना है कि एक गिरोह ने ज़कात देने से इंकार कर दिया, मानो राज्य के प्रति असहयोग आंदोलन छेड़ दिया गया। प्रश्न था क्या किया जाए? बहुत से वरिष्ठ नेताओं का मत था कि यह मौक़ा पुलिस कार्रवाई का नहीं है, मगर हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) की राय यह नहीं थी। हज़रत उमर (रज़ि०) पहले लोगों के साथ थे और इस मामले में हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) का विरोध करने में सबसे आगे थे, पर हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) ने साफ़ जवाब दिया—

'ख़ुदा की कसम! अगर बकरी का एक बच्चा भी, जो अल्लाह के रसूल को दिया जाता था, कोई देने से इन्कार करेगा तो उसके ख़िलाफ़ जिहाद करूँगा।'

यद्यपि हज़रत अबूबक्र रज़ि० की इस कठोर नीति का नतीजा यह निकला कि थोड़ी-सी चेतावनी के बाद ज़कात के इन्कारी ख़ुद ही ज़कात लेकर आपके पास हाज़िर हो गए और हज़रत उमर (रज़ि०) को हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) की दूरदर्शिता माननी पड़ी, फिर भी मतभेद होते हुए भी अपनी बात पर आग्रह न करना यह स्वयं हज़रत उमर (रज़ि०) की वरिष्ठता और सहनशीलता ही का परिचायक है।

हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) की ख़िलाफ़त की मुद्दत सवा दो साल रही। इस मुद्दत में जितने भी अहम काम हुए, सब में हज़रत उमर (रज़ि०) की राय ज़रूर हासिल की जाती, इसलिए हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) का अगर दाहिना हाथ कोई था, तो वह हज़रत उमर (रज़ि०) ही थे। यही कारण था कि अपने अन्तिम दिनों में हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) ने ख़िलाफ़त का उत्तराधिकारी अगर किसी को समझा था तो वह हज़रत उमर रज़ि० थे।

फिर भी देहांत के समय उन्होंने जनमत जानने के लिए वरिष्ठ साथियों से मशविरा किया। सबसे पहले हज़रत अब्दुर्रहमान इब्न औफ़ को बुलाकर पूछा। उन्होंने कहा, 'उमर की योग्यता में दो राय नहीं, पर तनिक स्वभाव में उग्रता है।'

'उनमें उग्रता इसलिए थी कि मैं नम्र था, जब ज़िम्मेदारी आ पड़ेगी तो वे स्वतः नम्र हो जाएँगे।' हजरत अबबक्र ने स्पष्ट किया।

फिर हज़रत उस्मान (रज़ि०) को बुलाकर पूछा,

उन्होंने कहा, 'मैं इतना कह सकता हूं कि उमर (रज़ि०) का अन्तर वाह्य से अच्छा है और हम लोगों में उनकी बराबरी का कोई नहीं।'

जब यह चर्चा आगे बढ़ी कि हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) हज़रत उमर (रज़ि०) को ख़लीफ़ा बनाना चाहते हैं, तो कुछ लोगों को आपत्ति हुई। हज़रत तलहा (रज़ि०) ने हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) से जाकर पूछा—

आपके मौजूद रहते हज़रत उमर (रज़ि०) का हम लोगों के साथ क्या बर्ताव था। जब वह स्वयं ख़लीफ़ा होंगे तो जाने क्या करेंगे? अब आप अल्लाह के यहां जा रहे हैं, यह सोच लीजिए, उसे आप क्या जवाब देंगे?'

'मैं अल्लाह से कहूंगा कि मैंने तेरे बन्दों पर उस व्यक्ति को सरदार नियुक्त किया, जो तेरे बन्दों में सबसे बेहतर था।' अबू-बक्र ने कहा।

फिर हज़रत उमर (रज़ि०) को ख़लीफ़ा नियुक्त कर दिया गया।

इराक़ की विजय

हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) की मृत्यु ऐसे समय में हुई थी कि अरब के विधर्मियों और नबूवत के झूठे दावेदारों का ख़ात्मा हो चुका था, मगर सीमावर्ती झड़पों और बाहरी ताक़तों के आक्रमणों का मुंह तोड़ जवाब देने के लिए सैनिक कार्रवाइयों का क्रम अभी शुरू ही हुआ था, इसलिए हज़रत उमर (रज़ि०) को सबसे पहले इन अधूरे कामों को पूरा करने में जुटना पड़ा।

फ़ारस-राज्य का चौथा युग, जो सासानी-युग कहलाता है, न्यायप्रिय बादशाह नौशेरवां की वजह से अधिक प्रसिद्ध था। प्यारे नबी (सल्ल०) के समय में उसी का पोता परवेज़ राज-गद्दी पर बैठा था। उसके मरते ही राज्य में अशान्ति, अव्यवस्था फैल गई। कई बादशाह एक-एक करके गद्दी पर बैठते-उतरते रहे, यहाँ तक कि आख़िरी बादशाह उर्द शेर दरबार ही के एक बड़े अधिकारी के हाथों क़त्ल कर दिया गया। इस अधिकारी की बादशाहत भी कुछ अधिक समय तक न चली, उसे भी क़त्ल कर दिया गया।

गद्दी की छीना-झपटी ने पूरे राज्य में एक उहापोह जैसी स्थिति पैदा कर दी थी।

हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) के ख़िलाफ़त-काल में हज़रत मुसन्ना ने एक सेना लेकर इराक़ पर आक्रमण किया था। फिर हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) ने हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) को उनकी सहायता के लिए भेजा। ख़ालिद ने इराक़ के तमाम सीमावर्ती क्षेत्रों

पर विजय प्राप्त कर ली और हियरा पर विजय-पताका फहरा दी। यह स्थान कूफ़ा से तीन मील दूर है।

हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) ने पूरे इराक़ पर विजय प्राप्त कर ली होती, लेकिन चूंकि इधर शाम (सीरिया) की मुहिम चल रही थी और जिस ज़ोर-शोर से वहां ईसाइयों ने लड़ने की तैयारियां की थीं, उसके मुक़ाबले का वहां पूरा सामान न था।

ऐसी स्थिति में हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) ने हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) को आदेश भेज दिया था कि वह तुरन्त शाम (सीरिया) को रवाना हो जाएँ और मुसन्ना को इराक़ के लिए अपना उत्तराधिकारी बनाते जाएँ। ख़ालिद उधर गए और इधर इराक़ में सैनिक कार्रवाइयां रुक गयीं।

हज़रत उमर (रज़ि०) ख़लीफ़ा हुए तो उन्होंने सबसे पहले इराक़ की मुहिम पर ही ध्यान दिया और मुसन्ना की सहायता के लिए सेना में भर्ती पर ज़ोर देना शुरू कर दिया। मस्जिद के आंगन में एक झंडा गाड़ा गया, ताकि लोग इसके तले जमा हों, लोग गिरोह-दर-गिरोह जमा तो हुए, हज़रत उमर (रज़ि०) ने नसीहत भी की। पर लोगों में कुछ तो ईरानियों का आतंक ऐसा छाया हुआ था कि उसका प्रभाव शून्य के बराबर ही रहा, कुछ लोगों के मन में ऐसा विचार जम गया था कि इराक़ पर विजय हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) ही के द्वारा सम्भव है, मुसन्ना द्वारा नहीं।

ऐसे मौक़े पर हज़रत मुसन्ना (रज़ि०) भी मौजूद थे। उन्होंने बड़े दर्द भरे स्वर में बोलना शुरू किया :–

'मेरे मुसलमान भाइयो! मैंने मजूसियों को आजमा लिया है, वे मैदान के आदमी नहीं हैं। इराक़ के बड़े-बड़े ज़िलों को हमने जीत लिया है और अजमी (ग़ैर-अरबी) हमारा लोहा मान गए हैं।'

इस भाषण का लोगों पर बड़ा असर पड़ा। फिर हज़रत उमर

(रज़ि०) ने बड़ा ही उत्साहवर्द्धक संभाषण किया, जिसने लोगों में एक उमंग भर दी। लोग भर्ती होने पर तैयार हो गए। उपस्थित जनों में अबू उबैद सक़फ़ी भी थे, जो क़बीला सक़ीफ़ के मशहूर सरदार थे। वे जोश में आकर उठ खड़े हुए और कहा कि 'इस काम के लिए मैं हाज़िर हूँ।'

उनकी देखा-देखी एक भीड़ लग गई और सेनानियों की संख्या एक हज़ार तक पहुंच गई। हज़रत उमर (रज़ि०) ने अबू उबैद को उनका सेनापति नियुक्त कर दिया। लोगों ने कहा कि उनका सरदार या तो क़ुरैश में से नियुक्त किया जाए या मदीनावासियों में से किसी व्यक्ति को यह सेवा सौंपी जाए, मगर हज़रत उमर (रज़ि०) ने साफ़ इन्कार कर दिया और कहा कि:—

'अबू उबैद सबसे पहले व्यक्ति हैं, जो इस झंडे तले आ मौजूद हुए, इसलिए इस मुहिम की सरदारी के वही हक़दार हैं, फिर अबू उबैद को ताकीद की कि उन लोगों से जिन्हें प्यारे रसूल (सल्ल०) का साथी होने का सौभाग्य प्राप्त है, हर मामले में मशविरा कर लिया करना।'

रुस्तम की तैयारियां

हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) के समय में इराक़ पर जो हमला हुआ था, उसने ईरानियों को चौंका दिया था। अतएव ईरान के बादशाह पूरान दख़्त ने प्रसिद्ध योद्धा रुस्तम को इस ध्येय के लिए और उसे युद्ध-मंत्री नियुक्त करके कहा कि अब तू ही हार-जीत का मालिक है। यह कह कर उसके सिर पर ताज रखा और दरबारियों को ताकीद की कि रुस्तम का हर हुक्म माना जाए। चूंकि फ़ारस के लोग अपनी फूट और आपसी उखाड़-पछाड़ का फल भोग चुके थे, उन्होंने दिल से उसके आदेशों का पालन किया। परिणाम यह निकला कि थोड़े ही दिनों में प्रशासन की बहुत-सी ख़ामियां दूर हो

गई और राजा ने फिर वही शक्ति प्राप्त कर ली, जो परवेज़ के समय में उसे प्राप्त थी।

रुस्तम ने युद्ध-मंत्री होते ही सबसे पहला काम यह किया कि इराक़ के ज़िलों में हरकारों को दौड़ा कर मुसलमानों के ख़िलाफ़ ख़ूब प्रोपेगण्डा किया। अपनी जनता में उत्तेजना भरने के लिए तरह-तरह की मन गढ़न्त कहानियां सुनाईं कि मुसलमान इतने ज़ालिम, इतने लुटेरे, इतने बदमाश हैं, फिर उसने धर्म-भावना जगा कर उसे मुसलमानों का दुश्मन बना दिया। इसका नतीजा यह निकला कि अबू उबैद के वहाँ पहुंचने से पहले ही उन स्थानों पर भी वहां की जनता मुसलमानों के ख़िलाफ़ हो गई, जो पहली मुहिमों में मुसलमानों के हाथ लग चुके थे यहाँ तक कि वे जगहें उनके क़ब्ज़े से निकल गईं।

इधर रुस्तम बड़े ज़ोर-शोर से मुसलमानों के मुक़ाबले की तैयारियां कर रहा था, उधर पूरान दख़्त ने उसकी सहायता के लिए भारी सेना भी तैयार कर ली। नरसा और जापान को सेनापति और कमांडिंग अफ़सर नियुक्त किया। जापान इराक़ का एक मशहूर रईस था और अरबों से उसे विशेष बैर था। नरसी किसरा (ईरानी बादशाह) का मौसेरा भाई था। ये दोनों सरदार विभिन्न रास्तों से इराक़ की तरफ़ बढ़े।

मुसन्ना हियरा तक पहुंच चुके थे कि शत्रु की तैयारियों का हाल मालूम हुआ। मसलहत जान कर ख़िफ़ान की ओर हट आए और वहीं डेरे डाल कर अबू उबैद की सेनाओं का इन्तिज़ार करने लगे। अबू उबैद एक महीने के बाद हियरा पहुंचे। थकन दूर होने के बाद अबू उबैद ने दोनों टुकड़ी की सरदारी अपने हाथ में ले ली।

जापान उस समय नमारक़ में पड़ाव डाले हुए था। अबू उबैद

ने अपनी सेनाओं के साथ इस ज़ोर से जापान पर आक्रमण किया कि अथक प्रयत्नों के बावजूद उसकी सेना के पैर उखड़ गए। जापान पकड़ा गया, पर इसके पकड़ने वालों के न पहचानने के कारण चालाकी से उन्हें दो जवान सेवक देकर अपने को छुड़ा लिया। बाद में लोगों ने जापान को पहचाना तो शोर मचाया कि हम ऐसे शत्रु को छोड़ना नहीं चाहते। मामला अबू उबैद के सामने पेश हुआ, आपने उदारता दिखाते हुए उसे छोड़ दिया और कहा, इस्लाम में वचन का भंग कर देना जायज़ नहीं।

इसके बाद अबू उबैद ने फ़रात नदी को फ़ौरन पार कर ज़ोरदार धावा बोल दिया, जहाँ नरसी सेना लिए पड़ा था। घमासान की लड़ाई हुई, नरसी हार गया और अपने दूसरे साथियों सहित गिरफ़्तार कर लिया गया। इस विजय से लूट का बहुत-सा माल हाथ लगा। इन वस्तुओं में एक प्रकार की खजूर भी थी, जो केवल सम्राट किसरा के लिए जुटाई गई थी। ये खजूरें बिना किसी भेद-भाव के सेना में बांट दी गईं और पांचवां भाग (खुम्स) हज़रत उमर (रज़ि०) की सेवा में भेज दिया गया।

अबू उबैद ने हज़रत उमर (रज़ि०) को एक पत्र भी लिखा कि यह फल जो अल्लाह ने अपनी कृपा से हमें भेजा है, केवल ईरानी बादशाहों के लिए मुख्य है। मैं सिर्फ़ इस मक़सद से इस फल को आपकी ख़िदमत में भेज रहा हूं कि आप इसे देखें, इसे खाएँ और अल्लाह का शुक्र अदा करें, जिसने हम बंद्दुओं को यह फल, जिसे बादशाह खाते हैं, दिखा दिया है।

नरसी के गिरफ़्तार हो जाने के बाद आस-पास के सरदारों ने भी अपनी हार स्वयं ही मान ली और इस्लामी राज्य के अधीन रहना स्वीकार कर लिया। उन्होंने अबू उबैद के सम्मान में भोज देना चाहा, पर अबू उबैद ने यह कहकर इन्कार कर दिया कि हम लोग

वही खाते हैं, जो हमारे सिपाही खाते हैं। इस जवाब पर अन्ततः उन लोगों ने पूरी सेना के खाने का इन्तज़ाम किया।

रुस्तम के लिए यह स्थिति असह्य थी। उससे ईरानियों की हार देखी न गई। वह और भी उत्तेजित हो उठा और उसने एक भारी सेना मुसलमानों से लड़ने के लिए भेज दी। इस सेना में चार हज़ार सैनिक थे और मर्दानशाह को सेनापति नियुक्त किया गया था। उस समय कियानी परिवार का साया शुभ मुहूर्त समझा जाता था। दरफ़्श कियानी, इस परिवार की यादगार था। वह उसके सिर पर साया किए हुए था, ताकि उसे निश्चित रूप से विजय मिल सके। पर अन्ध-विश्वास से कहीं समस्याएं हल हुआ करती हैं?

मुरौहा नामक स्थान पर दोनों सेनाओं ने पड़ाव डाल दिए। फ़रात नदी बीच में थी। बहमन मर्दानशाह की उपाधि थी। उसने अबू उबैद को सन्देश भिजवाया कि 'हम उतर कर उस पार आएँ या आप आएँगे?'

अबू उबैद के तमाम सरदारों का मशविरा था कि सामरिक दृष्टि से यहां से हटना भूल होगी, पर योद्धा अबू उबैद को यह राय साहस और बहादुरी के ख़िलाफ़ लगी। सरदारों से कहा, यह नहीं हो सकता कि मजूसी (अग्नि पूजक ईरानी) हमसे वीरता में आगे निकल जाएँ। सन्देशवाहक ने मौक़ा ग़नीमत समझा और अरबों को लज्जित करने के लिए कह सुनाया अरब कायर हैं, वे लड़ना क्या जानें। फिर क्या था। अबू उबैद उत्तेजित हो उठे और तमाम अरब सरदारों की राय के ख़िलाफ़ नदी को पार करने का फ़ैसला सुना दिया। मुसन्ना और सलीत बड़े नामी जनरल थे, उन्होंने इस प्रस्ताव का कड़ा विरोध किया और खुल कर कह दिया कि इस पर अमल करने से पूरी सेना नष्ट हो जाएगी, पर उनकी सुनी-अनसुनी कर दी गई। आख़िर किश्तियों का पुल बांधा गया और पूरी सेना पार उतर कर शत्रु सेना से भिड़ गई। उस ओर का मैदान बड़ा तंग और

असमतल था, इसलिए मुसलमानों को मौक़ा नहीं मिल सका कि सेना को तर्तीब दे सकें।

ईरानी सेना का दृश्य दिल दहला देने वाला था। भयानक हाथियों की पंक्तियां बड़ा ही भयावह दृश्य पेश कर रही थीं। हौदों में बड़े-बड़े घंटे रखे हुए थे, जो बड़े ज़ोर से बज रहे थे। अरब के घोड़ों ने यह भयानक दृश्य कभी देखा ही न था। बिदक कर पीछे हो रहे। अबू उबैद ने देखा, हाथियों के सामने कुछ ज़ोर नहीं चलता। घोड़े से कूद पड़े और साथियों को ललकारा कि वीरो! हाथियों को बीच में लो और हौदों को सवारों सहित उलट दो।

जब मुसलमानों ने, जो सिर से कफ़न बांध कर घर से निकले थे, अपने सरदार का आदेश सुना, तुरन्त घोड़ों से कूद पड़े और हौदों की रस्सियां काट-काट कर हाथी वालों को ज़मीन पर गिरा दिया, मगर हाथी जिस ओर झुकते थे, पंक्ति की पंक्ति पीस डालते थे। उनमें एक सफ़ेद हाथी भी था, जो सबका सरदार था, हज़रत उबैद उस पर आक्रमण कर बैठे। सूंड पर ऐसी ज़ोरदार तलवार मारी कि मस्तक से अलग हो गई। हाथी उत्तेजित हो उठा। वह झपटा और बढ़ कर उनको ज़मीन पर गिरा दिया और छाती पर पाँव रखकर उनकी हड्डियां चूर-चूर कर दीं।

अबू उबैद की मृत्यु के बाद उनके भाई हकम ने सेनापतित्व सम्भाला और उसी हाथी पर हमलावर हुए, जिस पर अबू उबैद ने हमला किया था। अबू उबैद की तरह उनको भी पांव में लपेट कर उसने मसल डाला। इस तरह सात आदमियों ने सेनापतित्व संभाला, झंडे हाथ में लिए और लड़ते-लड़ते मारे गए। अन्त में मुसन्ना ने झंडा हाथ में लिया, किन्तु उस समय लड़ाई का नक्शा बदल चुका था और सेना में भगदड़ मच चुकी थी। मुख्य बात यह थी कि एक व्यक्ति ने दौड़ कर पुल के तख़्ते तोड़ दिए कि कोई व्यक्ति भाग कर

जाने न पाए। पर लोग इतने बदहवास होकर भागे थे कि पुल की ओर रास्ता न मिला तो नदी में कूद पड़े। मुसन्ना ने दोबारा पुल बंधवाया और सवारों का एक दस्ता भेजा कि भागने वालों को इत्मीनान से पार उतार दे। स्वयं बची-खुची सेना के साथ शत्रु का आगा रोक कर खड़े हो गए और इस जमाव के साथ लड़े कि ईरानी जो मुसलमानों को दबाते आ रहे थे, रुक गए और आगे न बढ़ सके। फिर भी हिसाब किया गया तो मालूम हुआ कि नौ हज़ार सेना में से केवल तीन हज़ार सैनिक बाक़ी रह गए हैं।

इस्लामी इतिहास में युद्ध-स्थल से पलायन की घटना बहुत कम घटित हुई है और अगर कभी घटना घटित हुई भी तो इसका बड़ा ही दुखद प्रभाव पड़ा है। इस लड़ाई में जिन लोगों को यह रुसवाई नसीब हुई थी। वे मुद्दत तक बद्दुओं की तरह मारे-मारे फिरते रहे और मारे शर्म के अपने घरों को नहीं गए। प्रायः रोया करते और लोगों से मुँह छिपाते थे।

बुवैब की घटना

हज़रत उमर (रज़ि०) ने पूरे शान्त-भाव से इस ख़बर को सुना। किसी भी वीर-साहसी व्यक्ति के लिए पराजय की ख़बर उसकी वीरता और साहस में वृद्धि का कारण ही बनती है। ख़लीफ़ा उमर (रज़ि०) के साथ भी यही हुआ। वातावरण में उत्तेजना थी ही, उन्होंने ज़ोरदार तरीक़े से हमले की तैयारी का आदेश दे दिया। उन्होंने सैनिकों की भर्ती के लिए, हर-हर क़बीले में उत्तेजना फैलाने और उत्साह जगाने वाले अपने वक्ता भेज दिए। उनके जोशीले भाषणों से पूरे अरब में आग-सी लग गई। सेना में भर्ती होने के लिए तमाम क़बीलों के नौजवान पूरे जोश और उत्साह के साथ मदीना पहुंचने लगे। क़बीला अज़्द का सरदार मुख़फ़्फ़फ़ इब्न सुलैम सात सौ सवारों को लेकर आया। प्रसिद्ध हातिम ताई के बेटे अदी एक भारी सेना लेकर पहुँचे। इसी तरह बहुत से क़बीलों के सरदार अपने

साथ हज़ारों आदमी लेकर आए।

पूरे देश में उत्साह इतना जगा हुआ था कि नम्र लग़लब क़बीले के सरदारों ने हज़रत उमर (रज़ि०) के पास पहुँचकर निवेदन किया, हमें इस राष्ट्रीय युद्ध में विदेशियों के ख़िलाफ़ लड़ने की इजाज़त दी जाए। स्पष्ट रहे कि इस क़बीले का धर्म ईसाई था। उसकी बात मान ली गई और वे अस्त्रो-शस्त्रों से सुसज्जित एक हज़ार सेनानियों को अपने साथ लाए।

वे लोग भी सेना में भर्ती हो गए, जो पिछली लड़ाई में पराजित होकर भाग आए थे। उन्होंने अपना कलंक धोने और अपनी शर्म मिटाने के लिए ऐसा किया था।

यद्यपि ईरानियों ने शहर पर दोबारा क़ब्ज़ा कर लिया था, फिर भी मुसन्ना के कुछ जासूस वहां मौजूद थे, जो कभी-कभी उन्हें हालात बताते रहते थे। अब मुसन्ना की एक बड़ी सेना बन गई थी। कूफ़ा के क़रीब बुवैब नामक एक स्थान था, इस्लामी सेनाओं ने यहाँ पहुंचकर डेरा डाला। बुवैब फ़रात नदी के पश्चिमी किनारे पर स्थित था। हज़रत उमर (रज़ि०) ने मुसन्ना को ताकीद कर दी थी कि वह किसी हालत में भी नदी न पार करें कि सेना ख़तरे में पड़ जाए।

दूसरे किनारे पर ईरानी सेना ने पड़ाव डाल रखा था। इस समय ईरानी सेना का नेतृत्व मेहरान कर रहा था। ईरानियों की सेना तीन हिस्सों में बटी हुई थी। हर हिस्से के शुरू में हाथियों की क़तार थी और उनके आगे एक पैदल सेना थी, जो विचित्र प्रकार के बाजे बजा रही थी।

रमज़ान का महीना, उसकी पहली तारीख़ थी। मुसन्ना अपने मशहूर घोड़े पर सवार थे और अपनी सेना में चक्कर लगाकर सैनिकों के दिल बढ़ा रहे थे। वे कहते जाते थे– वीरो! देखना, तुम्हारे कारण इस्लाम के नाम पर बदनामी न आए।'

उस समय मुसलमानों की सेनाओं का नियम यह था कि 'अल्लाहु अक्बर' के नारों से बिगुल और कॉशन का काम लिया जाता था। पहली तक्बीर ('अल्लाहु अक्बर' कहने) पर सेना हथियारों से लैस होकर तैयार हो जाती, दूसरी तक्बीर पर सैनिक हथियार संभाल लेते और तीसरी पर धावा बोल देते थे, लेकिन मुसन्ना ने अभी मुश्किल ही से पहली तक्बीर कही होगी कि ईरानियों ने उन पर हमला बोल दिया। मुसलमानों ने जोश में आकर हमले को रोकने के लिए अपनी पंक्तियां तितर-बितर कर दी और आगे बढ़ने की कोशिश की। सामरिक दृष्टि से यह बहुत बड़ी ग़लती थी। मुसन्ना इसे सहन न कर सके। गुस्से में आकर अपनी दाढ़ी तक नोच ली। चिल्लाकर बोले, 'ख़ुदा के लिए इस्लाम को रुसवा न करो।' बात समझ में आ गई और पूरी सेना फिर नियमित रूप से नया हमला करने के लिए तैयार होने लगी।

इस बार इतनी शक्ति संजोकर हमला किया गया कि ईरानी पंक्तियां टूट गईं। घबराकर वे पुल की ओर भागे, मुसलमानों ने पुल का रास्ता बन्द कर रखा था। जब ईरानियों को अपने बचाव के लिए कोई शक्ल नज़र न आई तो उन्होंने फिर से अपनी सेनाओं को दुरुस्त किया और मुसलमानों पर ज़ोरदार हमला किया। घमासान लड़ाई हुई, दोनों तरफ़ के बड़े-बड़े सरदार मारे गए। मुसलमानों का पलड़ा भारी रहा, ईरानियों की पराजय हुई। तग़लब क़बीला के एक सवार ने सेनापति मेहरान का काम तमाम कर दिया। मेहरान के मरते ही लड़ाई ख़त्म हो गई। लगभग सभी ईरानी सैनिक मारे गए। जो भागना चाहते थे, वे भी दूसरी ओर नदी के कारण इस प्रकार घिर गए थे कि भाग न सके और मारे गए।

काफ़ी समय के बाद जब यात्रियों का इधर गुज़र हुआ तो उन्होंने जगह-जगह हड्डियों के ढेर पाए। स्वयं मुसन्ना का बयान है, 'यद्यपि मैं अनेक बार ईरानियों से लड़ा, मगर इससे पहले मैंने ऐसा

घमासान युद्ध नहीं देखा था।'

इस विजय से मुसलमानों की धाक ईरानियों पर जम गई और मुसलमान इराक़ी इलाके में खूब फैल गए।

जब यह ख़बर ईरान की राजधानी पहुंची तो खलबली मच गई। एक-दूसरे की नुक्ताचीनी शुरू हो गई। फल यह निकला कि पोरान दख़्त को राज्य-गद्दी से उतरना पड़ा और उसकी जगह सोलह वर्षीय यज़्द गुर्द को सत्तारूढ़ कर दिया गया। उस समय यज़्द गुर्द ही किसरा-वंश की एकमात्र यादगार था। यज़्द गुर्द ने कुछ ऐसी नीति अपनाई कि सरदारों और मन्त्रियों के आपसी मतभेद भी कम हो गए, यहाँ तक कि फ़ीरोज़ और रुस्तम जैसे सरदारों में मेल हो गया। ये दोनों सरदार राज्य में पूरे प्रभाव रखते थे और आपस में एक-दूसरे के दुश्मन थे। नए बादशाह ने कुछ सुधार-कार्रवाइयां भी कीं, सेनाओं और प्रतिरक्षा-विभाग का नए सिरे से गठन किया। राष्ट्रीयता की भावना को पूरे देश में पैदा करने की कोशिशें शुरू हो गईं। किले और नई फ़ौजी छावानियां तैयार कराई गईं। ईराक़ की उन आबादियों में, जिन पर मुसलमानों ने अपनी विजय-पताका फहरा दी थी, विद्रोह-भावना भड़का कर उन्हें अपने पक्ष में कर लिया गया। इस तरह अब मुसलमानों के लिए इन आबादियों का कोई भरोसा नहीं रह गया।

हज़रत उमर (रज़ि०) को ये ख़बरें पहुंचीं तो तत्काल मुसन्ना को आदेश दिया कि सेनाओं को हर ओर से समेटकर अरब-सीमा की ओर हट जाओ और उन तमाम क़बीलों को, जो इराक़ में फैले हुए हैं, हुक्म भेज दो कि निश्चित समय पर इकट्ठा हो जाएँ। साथ ही बड़े ज़ोर-शोर से फ़ौजी तैयारियां शुरू कर दीं। हर ओर ऐलान करा दिया गया कि अरब के ज़िलों में जहाँ-जहाँ भी वीर, योद्धा, कवि, वक्ता और परामर्शदाता हों, तुरन्त ख़िलाफ़त-दरबार में आ जाएँ। चूंकि हज का ज़माना आ चुका था, हज़रत उमर (रज़ि०) स्वयं

मक्का आए और हज से छूटे नहीं कि हर ओर से क़बीलों का तूफ़ान उमड़ आया।

हज़रत उमर (रज़ि०) हजकरके वापस हुए तो जहां तक निगाह जाती थी, सिर ही सिर नज़र आते थे। ये सभी सैनिक थे। आदेश दिया कि सेना को नियमित रूप दे दिया जाए और मैं स्वयं सेनापति बनकर चलूंगा। सेना जब तैयार हो गई तो हज़रत अली (रज़ि०) को बुलाया, शासन-कार्य उनके सुपुर्द किया और स्वयं मदीना से निकलकर इराक़ की ओर चल पड़े। सरार, जो मदीना से 3 मील पर है, वहाँ पहुंच कर पहली मंज़िल की। लोगों के आग्रह पर रात में मन्त्रणा-परिषद् का अयोजन किया गया, बुज़ुर्ग और अनुभवी साथियों का आग्रह था कि ख़लीफ़ा का सेनापति के रूप में इस मुहिम के साथ जाना उचित नहीं है। अगर पराजय हुई और ख़लीफ़ा को कोई क्षति पहुंची तो इस्लाम का अन्त ही समझा जाएगा। हज़रत उमर (रज़ि०) जब न जाने पर सहमत हो गए तो समस्या खड़ी हो गई कि किसे सेनापति बनाया जाए। प्रसिद्ध सेनापति व योद्धा ख़ालिद व अबू उबैदा उस समय सीरिया के मोर्चों पर डटे हुए थे। आख़िर सोच विचार के बाद हज़रत अली (रज़ि०) को सेनापतित्व के लिए चुना गया। तुरंत दूत मदीना भेज दिया गया, लेकिन हज़रत अली (रज़ि०) ने विवशता जताई और इन्कार कर दिया। लोग अभी विचार ही कर रहे थे कि अब्दुर्रहमान इब्न औफ़ ने साद इब्न अबी वक़्क़ास का नाम पेश कर दिया।

साद उच्च श्रेणी के सहाबी (प्यारे रसूल के साथी) और प्यारे रसूल (सल्ल०) के मामूं (मामा) थे। उनकी वीरता और उनका साहस सभी को मान्य था, लेकिन वह सेनापतित्व-कर्त्तव्य भी निभा सकेंगे, इस ओर से हज़रत उमर (रज़ि०) को सन्तोष न था, मगर जब सभी ने उनके सेनापतित्व पर हामी भर ली तो उन्होंने भी मंज़ूरी दे दी, साथ ही यह ताकीद भी कर दी कि हर मामले में

ख़लीफ़ा से मशविरा कर लिया करें। अतः हज़रत उमर (रज़ि०) ने इस मुहिम के तमाम इन्तिज़ाम अपने हाथ में रखे-सेना का क्रम, आक्रमण की तैयारी, धावा, सेनाओं का विभाजन, तात्पर्य यह कि हर प्रकार के आदेश समय-समय पर हज़रत साद (रज़ि०) को देते रहे।

साद (रज़ि०) की नियुक्ति से लोग सन्तुष्ट थे। झण्डा फ़हराया गया और सेना आगे के लिए रवाना हो गई। सत्तरह या अठारह मंज़िलें तय करने के बाद सेना सालबा पहुंच गई। सालबा कूफ़ा से तीन मंज़िल दूर है। पानी की अधिकता और अच्छी जगह होने के कारण यहाँ हर महीने बाज़ार लगा करता था। हज़रत साद (रज़ि०) को ख़लीफ़ा ने आदेश दे रखा था कि जिस स्थान पर सेना का पड़ाव हो, वहां का नक्शा, सेना का फैलाव, जमाव का ढंग, रसद की स्थिति और दूसरी तमाम बातों की सूचना उन्हें नियमित रूप से दी जाती रहे। इसलिए पड़ाव डालते ही सेनापति ने ख़लीफ़ा हज़रत उमर (रज़ि०) को एक-एक बात की विस्तृत सूचना दे दी। उस समय सेना में तीस हज़ार सैनिक थे। वहां से एक सविस्तार आदेश आया। सेनापति साद ने उसके अनुसार अपनी सेना को नियमित ढंग से गठित किया। अलग-अलग भागों की टुकड़ियों के अलग-अलग कमांडिंग अफ़सर नियुक्त किए। एक महीने के पड़ाव के बाद सेना आगे बढ़ी।

यहां से चलकर शिराफ़ में पड़ाव डाला गया। ख़लीफ़ा का आदेश आया, शिराफ़ से आगे निकल कर क़ादसिया में पड़ाव डालो और पड़ाव इस तरह डाला जाए कि सामने इराक़ का क्षेत्र हो और पीछे की ओर अरब के पहाड़ हों, ताकि अगर नतीजा तुम्हारे हक़ में हो, तो जितना बढ़ना चाहो, बढ़ते चले जाओ और अगर तुम्हारे ख़िलाफ़ हो तो तुम अरब के पहाड़ों में छिपकर अपनी रक्षा कर सको।

क़ादसिया नगर काफ़ी उपजाऊ और हरे-भरे भूभाग पर स्थित था और नहरों और पुलों की वजह से सुरक्षित स्थान भी था। इस्लाम लाने से पहले हज़रत उमर (रज़ि०) इस क्षेत्र से कई बार गुज़रे थे और यहां के कोने-कोने के जानकार थे, फिर भी वहां की नई स्थिति को मालूम करके सेनापति को और अधिक आदेश भेजे।

क़ादसिया पहुंच कर सेनापति ने हर ओर जासूस दौड़ाए, ताकि शत्रु-सेना के बारे में और दूसरी ख़बरों के बारे में सूचनाएं प्राप्त कर सकें। इन जासूसों ने आकर बताया कि फ़र्रुख़ज़ाद का बेटा रुस्तम, जो अरमानिया का मशहूर रईस है, सेनापति नियुक्त किया गया है और मदायन से चलकर साबात में ठहरा हुआ है। साद ने हज़रत उमर (रज़ि०) को ख़बर दी, वहां से जवाब आया कि लड़ाई से पहले कुछ लोग दुश्मनों तक पहुंचें और उन्हें इस्लामी शिक्षाओं से परिचित कराएं। प्राचीनकाल में ईरानियों की राजधानी अस्तख़र थी, लेकिन नौशेरवाँ ने मदायन को अपनी राजधानी बनाया था। यह क़ादसिया से लगभग चालीस मील के फ़ासले पर स्थित था। मुसलमानों के चौदह दूत घोड़ों पर सवार होकर मदायन को चले। राह में जिधर से गुज़र होता था, तमाशाइयों की भीड़ लग जाती थी, यहाँ तक कि वे राजधानी के क़रीब पहुंचकर ठहरे। यद्यपि उनका प्रत्यक्ष रूप यह था कि घोड़ों पर ज़ीन और हाथों में हथियार तक न था, फिर भी निर्भीकता, साहस और वीरता उनके चेहरों से झलकती थी और तमाशाइयों पर उसका असर पड़ता था।

यज़्दगुर्द ने जब उनके आगमन की सूचना पाई तो उसने दरबार सजाने का हुक्म दे दिया, फिर दूतों को बुला भेजा। ये लोग अरबी जुब्बे (लम्बा पहनावा) पहने, कंधों पर यमनी चादरें डाले, हाथों में कोड़े लिए, मोज़े चढ़ाए, दरबार में दाख़िल हुए। पिछली लड़ाइयों की विजय से समूचे ईरान में अरब की धाक बैठ गई थी। यज़्दगुर्द ने मुस्लिम दूतों को इस शान से देखा तो उस पर रोब-सा

छा गया। फिर भी उसने पूछा—

'तुम लोग यहां क्यों आए हो?'

इस शिष्ट-मंडल के नेता नोमान इब्न मुक्रिन थे, उन्होंने सबसे पहले इस्लाम की विशेषताएं बताईं, फिर कहा, 'इस सच्चे दीन (धर्म) से अगर आप सहमत हैं, तो उसे स्वीकार कर लें। अगर आप इससे सहमत नहीं हैं, तो अल्लाह की ज़मीन पर अल्लाह के दीन ही का प्रभुत्व सर्वथा उचित है। और उस दीन पर आधारित इस्लामी हुकूमत के अधीन हो जाए। अगर यह भी मंज़ूर नहीं और लड़ने पर उतारू हैं तो फिर तलवार हमारे-आपके बीच फ़ैसला कर देगी।'

ऐसी बेधड़क बातें सुनकर यज़्दगुर्द गुस्से से काँप उठा और कहा, 'हे भाग्यहीनो! तुम इतने दुस्साहसी बन बैठे हो कि हम से इतनी बढ़-चढ़ कर बातें करते हो? क्या तुम्हें अपने बारे में याद नहीं रहा कि तुम से ज़्यादा बदकिस्मत और नीच जाति और कोई न थी। हमारे सीमावर्ती ज़मींदार तुम्हारी थोड़ी-सी सरकशी पर तुम्हें नाकों चने चबवा दिया करते थे। आज भी याद रखो कि हमारे सिपाही तुम्हें ऐसा पाठ पढ़ाएंगे कि तुम भूलकर भी इधर का रुख़ न करोगे।'

शिष्टमंडल चकित रह गया, लेकिन मुग़ीरा इब्न ज़रारा इस कड़वी बात को सहन न कर सके, उठ कर बोले— "यह ठीक है कि हम बदक़िस्मत थे, गुमराह थे, आपस में कट मरते थे, अपनी लड़कियों को ज़िन्दा गाड़ देते थे, लेकिन अल्लाह ने हम पर कृपा की, अपना पैग़म्बर भेजा, जो वंश व परिवार की दृष्टि से हम सब में श्रेष्ठ था। हमने शुरू-शुरू में उसका बड़ा विरोध किया। हर प्रकार से उसे कष्ट पहुंचाया। वह सच कहता था, लेकिन हम उसे झुठलाते थे। आख़िर उसकी बातों ने धीरे-धीरे हमारे दिलों पर असर किया और हम उस पर ईमान लाए। वह जो कुछ कहता था, अल्लाह के

हुक्म से कहता था और जो करता था, ख़ुदा के हुक्म से करता था। उसने हमें कहा कि इस पाक दीन को संसार वालों के सामने रखो। जो लोग इस्लाम स्वीकार करें, वे तुम्हारे अधिकारों में बराबर हैं, लेकिन बलात् धर्म परिवर्तन गुनाह है। जिनको इस्लाम से इन्कार हो, लेकिन टैक्स देना स्वीकार कर लें, उनको इस्लाम की हिमायत में ले लो और उनकी जान व माल की हिफ़ाज़त करो और जो दोनों बातों से इनकार करें और लड़ने पर ही तुले रहें, उनको मुक़ाबले के लिए बुलाओ और तलवार के ज़रिए फ़ैसला करो।'

यज़्दगुर्द शिष्टमंडल के सदस्य का यह बयान सुन कर काफ़ी नाराज़ हुआ। कहने लगा, 'अगर दूतों का क़त्ल जायज़ होता, तो आज तुम्हारी बोटी-बोटी करके चीलों और गिद्धों के आगे डलवा देता।'

इसके बाद उसको ज़लील करने के उद्देश्य से मिट्टी का एक टोकरा पेश किया अर्थात यह कि 'तुम्हारे सिर पर ख़ाक-धूल। हम तुम्हें ज़लील व रुसवा करके अपने देश से निकाल देंगे।' वे ख़ुशी-ख़ुशी मिट्टी का टोकरा लिए सेनापति के पास पहुंचे और जिस चीज़ को ईरानियों ने अपशकुन मान् कर पेश किया था, उसी को अच्छा सकुन समझ कर विजय की मुबारकबाद पेश कर दी कि शत्रु ने स्वयं ही हमें अपनी ज़मीन भेंट कर दी।

इस घटना के कई महीने तक दोनों ओर से कोई हलचल न हुई।

यज़्द गुर्द के आग्रह के बाद भी रुस्तम लड़ाई को टाल रहा था। वह कई महीने तक साबात में डेरा डाले पड़ा रहा।

इस मुद्दत में मुसलमान सीमावर्ती क्षेत्रों में इस्लाम का आह्वान करते, व्यावहारिक आदर्श प्रस्तुत करते, इससे ईरानी सरदारों को चिन्ता होने लगी कि कहीं सीमावर्ती क्षेत्रों में लोग मुसलमान न हो जाएं। यज़्दगुर्द के पास बात पहुंची, उसने रुस्तम

को हिदायत की कि वह मुसलमानों को इसका अवसर न दे। विवश हो रुस्तम की साठ हज़ार सैनिकों की सेना साबात से आगे बढ़ीं और कादसिया पहुंचकर उन्होंने भी पड़ाव डाल दिया। असत्य पर आधारित ये ईरानी सेनाएं जिन-जिन स्थानों से गुजरीं, अपने दुराचरण का प्रमाण जुटाती गईं, तमाम अफ़सर शराब पीकर निर्लज्जता के हर काम कर डालते थे, लोग मुसलमानों के शुद्ध आचरण को देख-समझ चुके थे, ईरानियों के दुराचरण का प्रभाव उन पर उल्टा ही पड़ा और वे खुल्लम-खुल्ला कहने लगे—"लगता है, ईरानी साम्राज्य का अन्त करीब आ गया है।"

रुस्तम चूंकि लड़ने से जी चुराता था, इसलिए उसने साद (रज़ि०) को कहलवा भेजा कि कोई विश्वसनीय दूत भेजो, जिससे समझौते के लिए वार्ता की जा सके। रुबई इब्न आमिर को यह काम सौंपा गया। उनका पहनावा बहुत ही सादा था। उनके हाथ में एक नेज़ा था, दूसरे में तलवार। इसी रूप में शान-शौकत भरे ईरानी दरबार में पहुंचे। नियमानुसार जब संतरियों ने नेज़ा और तलवार लेनी चाहीं तो उन्होंने इन्कार कर दिया और कहा कि मुझे तुमने खुद बुलाया है, तो मैं आया हूं। अगर मेरी इच्छानुसार मुझे दरबार में जाने की इजाज़त नहीं मिल सकती, तो मैं लौट जाऊँगा। जब रुस्तम को इस बात की ख़बर दी गई, तो उसने कहा, "कोई हर्ज नहीं, आने दो।" चुनांचे रुबई को दरबार में लाया गया, लेकिन उन पर ईरानी दरबार की शान व शौकत का कोई प्रभाव न पड़ा। रुस्तम ने रुबई से पूछा, "इस देश में क्यों आए हो?" उन्होंने बिना किसी झिझक के जवाब दिया— 'इसलिए कि रचित वस्तुओं के स्थान पर रचयिता की भक्ति की जाए।'

रुस्तम कुछ क्षणों के लिए चुप रहा, फिर बोला, हम सलाह व मशविरे के बाद जवाब तुम्हारे पास भिजवा देंगे।

दरबारियों ने जब रुबई का ज़ंग लगा म्यान देखा, तो चकित होकर पूछा, 'क्या इसी बलबूते पर हमसे लड़ने आए हो?' लेकिन जब रुबई ने तलवार म्यान से खींच कर दिखाई तो उनकी आंखें चकाचौंध हो गईं।

रुबई तो वापस आ गए, मगर सन्देश भेजने-भिजवाने का सिलसिला बराबर चलता रहा।

रुस्तम ने एक और कोशिश की कि किसी तरह ये लोग बिना लड़े ही वापस लौट जाएँ। अतएव उसके कहने पर मुग़ीरा को दूत के रूप में उसके पास भेजा गया। रुस्तम के दरबार की शान व शौकत आंखों को चुंधिया रही थीं। दीबाज व हरीर के परदे, रेशमी कालीन, सोने के जड़ाऊ सिंहासन, सन्तरी पहरेदार, रक्षक, सुनहरी रूपहली वर्दी वाले सिपाही, दोनों ओर खड़े अरब दूत को आतंकित व प्रभावित करने के लिए काफ़ी थे। रुस्तम का ख़याल था कि अरब दूत ईरानी दरबार की भव्यता को देखकर आतंकित हो जाएगा और अपने सेनापति को मशविरे देगा कि यहां से बिना लड़े वापस चले जाने में ही बुद्धिमानी है। पर मुग़ीरा भी प्रभावित न हुए। उन्होंने भी रुबई की तरह नेज़ा और तलवार को द्वार पर रख देने से इन्कार कर दिया। आख़िर जब इसी हालत में अन्दर आने की अनुमति दी गई तो वे सीधे आसन पर जा चढ़े और रुस्तम के पास बैठ गए। रुस्तम का गुस्सा भड़क उठा कि अरब ऐसा दुस्साहस कर सकता है कि वह चीफ़ आव दी स्टाफ़ का यों अनादर करे। मगर मुग़ीरा तो सबके पैदा करने वाले की इबादत करते थे, उन्होंने निस्संकोच भाव से रुस्तम से कहा, "तुमने क्यों ढोंग रचा रखा है कि तुम खुद तो इतने ऊंचे बैठे हो और दूसरे लोग नीचे। तुम्हें शर्म आनी चाहिए कि जो तुमने अल्लाह के बन्दों के बीच इतने दर्जे बना रखे हो। मनुष्य-मनुष्य के रूप में समान है और तुम्हारा यह भेद-भाव तो मानवता के विपरीत है।"

रुस्तम ने उनकी बात को टाल दिया और इस सीधी-सच्ची बात को ऐसे पी गया मानो कोई बात ही नहीं हुई। रुख़ बदलते हुए उस ने कहा, "हमारा साज़ो सामान तुमने देख लिया है। तुम्हारे लिए बेहतरी इसी में है कि तुम हमारे देश से अपनी जानें बचाकर वापस चले जाओ। हम तुम से किसी प्रकार की छेड़-छाड़ न करेंगे, बल्कि तुम्हें बहुत कुछ इनाम देंगे।"

मगर इन बातों को सुनकर मुग़ीरा के कानों पर जूं तक न रेंगी। इनका उत्तर यही था कि या तो हमारी शर्तें मान लो, वरन् तलवार हमारे और तुम्हारे बीच फ़ैसला कर देगी।

रुस्तम का इतना कहना था कि क्रोध से उसकी रगें तन गईं और कहा, "सूर्य की क़सम! मैं तुम सब को तबाह ही करके छोड़ूंगा।"

क़ादसिया की लड़ाई

अब तक रुस्तम लड़ाई को बराबर टाल रहा था, मगर अब मुग़ीरा से बातें होने के बाद वह इतना उत्तेजित हो उठा कि सच में लड़ाई की तैयारी शुरू कर दी और आदेश दिया कि नहर, जो बीच में रुकावट डाल रही थी, सुबह तक पाट दी जाए। फिर क्या था, सुबह तक आदेश का पालन कर दिया गया और दोपहर से पहले-पहले सेना उस पार आ गई। रुस्तम स्वयं शस्त्रों से लैस हुआ, दोहरे कवच धारण किए और विशेष घोड़े पर सवार होकर जोश में बोला, ''कुल अरब को चकनाचूर कर दूंगा।'' किसी सिपाही ने कहा– 'हां, अगर ख़ुदा ने चाहा।' बोला– 'ख़ुदा ने न चाहा तब भी।'

सेना को नियमित ढंग से सजाया, आगे-पीछे तेरह पंक्तियों में उसे विभाजित किया। मध्यम पंक्ति के पीछे हाथियों का किला बाँधा और सख़्त मोर्चाबंदी कर सेना को इस तरह लड़ाई के मैदान में उतारा कि उसकी पंक्तियों को तोड़ना आसान न हो सके। साथ ही लड़ाई के मैदान से राजधानी तक हर-हर क्षण सूचना भेजने के लिए जगह-जगह आदमी बिठा दिए।

हज़रत साद (रज़ि०) बीमार थे, इसलिए सेना के साथ न जा सके। ख़ालिक़ इब्न अर्तफ़ा को अपनी जगह पर सेनापति नियुक्त कर दिया अरब के कवियों ने कविताओं से और वक्ताओं ने भाषणों से इस्लामी सेना में उत्साह और हौसला बढ़ा रखा था। क़ारियों (क़ुरआन पढ़ने वालों) ने जिहाद की आयतों का पाठ कर-करके पूरी

सेना को जिहाद-भाव से भर दिया।

लड़ाई शुरू हो गई। बारी-बारी दोनों ओर के वीर-योद्धा निकल कर एक-दूसरे से भिड़े, फिर आम जंग शुरू हो गई। अरब घोड़े हाथियों से डर कर भागे, मगर अरब योद्धाओं ने उन पर तुरन्त क़ाबू पा लिया और इस तेज़ी से हमला किया कि हाथियों पर सवार सैनिकों को नीचे गिरा दिया और हाथियों को मैदान से भगा दिया। अंधेरा छा जाने पर दोनों ओर की सेनाएँ मैदान से हट गईं। यह क़ादसिया की पहली लड़ाई थी।

यद्यपि साद बीमार थे, चलने-फिरने से मजबूर थे, इसके बावजूद नए सेनापति की क़दम-क़दम पर रहनुमाई कर रहे थे। अगली सुबह साद (रज़ि०) ने शहीदों को कफ़न-दफ़न कराया, घायलों की जांच-पड़ताल की। अभी वे इन कामों में ही व्यस्त थे कि जासूसों ने ख़बर दी कि हज़रत उमर (रज़ि०) के हुक्म के मुताबिक सीरिया से छः हज़ार की सेना सहायता के लिए आ रही है। इस ख़बर के मिलते ही मुसलमानों के दिल को ढाढ़स बंध गई। लड़ाई शुरू हुई। पहले तो परम्परानुसार दोनों ओर के योद्धा बारी-बारी अपनी शक्ति का परीक्षण करते रहे, फिर घमासान लड़ाई शुरू हो गई।

सेना अधिकारी क़ाअक़ाअ ने अरबी घोड़ों पर झोल और काले बुर्के डालकर उनको इतना डरावना बनाया कि ईरानी घोड़े और हाथी उनसे डर गए। इस लड़ाई में दो हज़ार मुसलमान और दस हज़ार ईरानी मारे गए और घायल हुए। इस लड़ाई में बहमन मारा गया।और भी दूसरे कई योद्धा इस लड़ाई में काम आए।

तीसरी लड़ाई घमासान की थी। सेना अधिकारी क़ाअक़ाअ ने सुबह से पहले कुछ टुकड़ियाँ भेज दीं और उनको हुक्म दिया कि जब लड़ाई शुरू हो तो ठीक उसी समय घोड़े दौड़ाते हुए लड़ाई के मैदान

में पहुंचे और प्रचार करे कि नई कुमुक सीरिया की ओर से आई है। साथ ही यह भी कि ये टुकड़ियाँ एक साथ नहीं, बारी-बारी आएँ। इस चाल से ईरानियों पर एक आतंक छा गया।

लड़ाई शुरू हुई। नारों की गूंज से धरती काँप उठी। अरबों ने एक ईरानी भयानक हाथी को इस तरह घायल किया कि वह पागल होकर लड़ाई के मैदान की ओर भागा। उसकी देखा-देखी सब हाथी उसके पीछे भाग निकले। सारी रात लड़ाई जारी रही, लोग नींद और थकावट से चूर थे, मगर लड़ाई घमासान की चलती रही। सवार घोड़ों से कूद पड़े। मुसलमानों ने नेज़े फेंक कर तलवारें उठा लीं। और ईरानी सेना को धकेलते हुए रुस्तम तक पहुंचे, वह सिंहासन पर बिराजमान था। यह दृश्य देख कर वह डर गया। लेकिन बचने की कोई शक्ल न देखकर तुरन्त तलवार लेकर मुसलमानों के मुकाबले में डट गया। घावों से जब छलनी हो गया तो भाग कर सामने की नहर में कूद पड़ा। मुसलमानों ने भी उसके पीछे छलांग लगा दी और उसे बाहर निकालकर उसका अन्त कर दिया और नारों से आसमान सिर पर उठा लिया।

जब ईरानी सेना ने रुस्तम के मारे जाने की ख़बर सुनी, बदहवास हो गई, उसका मनोबल टूट गया, उत्साह खो बैठी और भगदड़ मच गई। मुसलमानों ने भागती हुई सेना का पीछा किया और उनमें से बहुतों को मौत के घाट उतार दिया।

जिस समय क़ादसिया की लड़ाई चल रही थी, मुसलमानों के ख़लीफ़ा हज़रत उमर (रज़ि०) ने जैसे मानो आदत बना ली थी कि हर दिन मदीना से बाहर निकल जाते और इन्तिज़ार में रहते कि अगर कोई दूत लड़ाई के मैदान से किसी तरह की ख़बर लाए, तो रास्ते ही में उससे सुन लें। अतएव जिस दिन साद का दूत विजय-पत्र लेकर मदीना के क़रीब पहुंचा तो हज़रत उमर (रज़ि०) रास्ते ही में मौजूद मिले। आपने दूत से पूछा कि तुम कहां से आए हो? उसने

बताया कि वह अमीरुल-मोमिनीन (ख़लीफ़ा) को विजय की सूचना देने आया है। आप हालात पूछने के लिए दूत के ऊँट के साथ-साथ भागे जा रहे थे। जब शहर में दाख़िल हुए और हरेक ने आपको अमीरुलमोमिनीन कह कर सम्बोधित किया तो दूत बड़ा घबड़ाया। उसने ख़लीफ़ा के साथ अपनी गुस्ताख़ी की माफ़ी चाही, मगर आप तो ऐसी बातों को कोई महत्व ही न देते थे। कहा: "नहीं, कोई बात नहीं, तुम तो अपनी बात कहे जाओ।" और इसी तरह वह बात करते-करते घर तक आए, मदीना पहुंचकर खुली सभा में विजय की शुभ-सूचना दी और एक अति प्रभावपूर्ण वक्तव्य दिया, जिसका कुछ अंश इस प्रकार है:–

"मुसलमानो! मैं बादशाह नहीं हूं कि तुम को गुलाम बनाना चाहूं, मैं खुद खुदा का गुलाम हूं, हां, ख़िलाफ़त का बोझ मेरे सिर पर रखा गया है। अगर मैं इस तरह तुम्हारा काम करूँ कि तुम चैन से घरों में सोओ, तो यह मेरा सौभाग्य है। मैं तुम्हें सिखाना चाहता हूँ, लेकिन कथन से नहीं, बल्कि कर्म से।"

कादसिया की लड़ाई में जो ईरानी या अरब मुसलमानों से लड़े थे, उनमें ऐसे भी थे जो दिल से लड़ना नहीं चाहते थे, बल्कि ज़बर्दस्ती सेना में पकड़ कर लाए गए थे। बहुत-से लोग घर छोड़कर निकल गए थे। विजय के बाद ये लोग साद के पास आए और अम्न की दरख़्वास्त की। हज़रत साद (रज़ि०) ने ख़लीफ़ा को इस स्थिति से अवगत कराया। हज़रत उमर (रज़ि०) ने सहाबियों को बुलाकर राय ली और सबने एक राय होकर इसे स्वीकृति दे दी। सार यह कि समूचे देश को अम्न दे दिया गया। जो लोग घर छोड़ कर निकल गए थे, वापस आ-आकर आबाद होते गए। फिर जनता से मुसलमानों का यह सम्पर्क इतना बढ़ा कि अक्सर बुज़ुर्गों ने उनसे रिश्तेदारियां भी कर लीं।

बाबिल की ओर

ईरानी क़ादसिया से परास्त होकर भागे तो बाबिल में ही ठहर सके। बाबिल एक सुरक्षित और सुदृढ़ सैनिक छावनी थी। वहां सेना का जमाव शुरू हो गया। इस नई सेना का सेनापति फ़ीरोज़ा नियुक्त किया गया था।

जब इसकी सूचना हज़रत साद (रज़ि०) को पहुंची, तो उन्होंने इस सैनिक जमाव को नष्ट करने का निश्चय कर लिया और बाबिल की ओर पूरी सेना लेकर चल पड़े। कुछ सेना आगे भेज दी, ताकि वह रास्ता साफ़ करती जाए। इस टुकड़ी की शत्रुओं से जगह-जगह झड़पें हुईं और मार्ग में बाधाएँ भी पड़ीं। लेकिन वह हर जगह विजयी ही होती रही। बाबिल पहुंचकर ईरानी और इस्लामी सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ। नेज़े से नेज़ा और तलवार से तलवार टकराई। ईरानी सेना हार गई और वह भाग निकली।

हज़रत साद ने बाबिल में कुछ दिनों तक और रुकने का निश्चय किया और ज़ुहारा के कमांड में एक टुकड़ी आगे रवाना कर दी। ईरानी सेनाएं बाबिल से भाग कर कूसी में ठहरी थीं और शहरयार के नेतृत्व में मुसलमानों का मुक़ाबला करने की तैयारियाँ कर रही थीं। ज़ुहारा कूसी से गुज़रे तो शहरयार मुक़ाबले पर आ गया और लड़ाई के मैदान में आकर पुकारा कि जो वीर पूरी सेना में चुना हुआ हो आकर मुझ से लड़ ले। ज़ुहारा ने कहा, 'मैंने स्वयं तेरे मुक़ाबले में आने का निश्चय किया था, लेकिन तेरा यह दावा है तो कोई ग़ुलाम ही तेरे मुक़ाबले को जाएगा।' यह कह कर नाबिल को, जो तीम क़बीले का ग़ुलाम था, इशारा किया। उसने घोड़ा आगे बढ़ाया। शहरयार भारी शरीर वाला नामी योद्धा था। नाबिल को कमज़ोर देखकर नेज़ा हाथ से फेंक, गरदन में हाथ डाल कर ज़ोर से खींचा और ज़मीन पर गिरा कर सीने पर चढ़ बैठा। संयोग की बात, शहरयार का अंगूठा नाबिल के मुंह में आ गया। नाबिल ने इस ज़ोर

से काटा कि शहरयार तिलमिला उठा। नाबिल मौक़ा पाकर उसके सीने पर चढ़ बैठा और तलवार से उसके पेट को फाड़ डाला। शहरयार बड़े ही मूल्यवान वस्त्रों और हथियारों से सुसज्जित था। नाबिल ने क़वच आदि उसके शरीर से उतारकर हज़रत साद (रज़ि०) के आगे लाकर रख दिए। साद ने ये चीज़ें उसको पुरस्कार स्वरूप दे दीं। इस लड़ाई में भी ईरानियों के क़दम उखड़ गए और वे बहुत बुरी तरह लड़ाई के मैदान से भाग निकले।.

कूसी एक ऐतिहासिक जगह थी। हज़रत इब्राहीम (अलै०) को नमरूद ने यहीं क़ैद कर रखा था। हज़रत साद ने उस जेलख़ाने को जाकर देखा, जहां हज़रत इब्राहीम (अलै०) क़ैद किए गए थे। वहां से वह बहराशेर पहुंचे। इस शहर के नाम के रखने का कारण यह बयान किया जाता है कि ईरान के किसरा (सम्राट) ने एक शेर पाल रखा था, इसलिए शहर को बहरा शेर कहते थे। जब मुसलमानों की सेनाएँ इस शहर में पहुंची तो शत्रु ने इस शेर को सेना की ओर छोड़ दिया। शेर ने हाशिम पर, जो कमांडर थे, हमला किया। उन्होंने इस फुर्ती से तलवार मारी कि एक ही वार में शेर का काम तमाम हो गया। मुसलमानों ने इसे विजय का शुभारम्भ समझा और आगे बढ़कर शहर को घेर लिया। आस-पास के लोगों ने समझौता करके जिज़या देना स्वीकार कर लिया, लेकिन इस शहर का घेराव दो महीने तक रहा। आख़िर नगरवासी तंग आ गए और एक दिन शहर से निकल कर मुसलमानों के मुक़ाबले में जा डटे। लड़ाई शुरू हो गई। प्रसिद्ध सरदार ज़ुहारा ने ईरानियों के सरदार शहर बराज को मार डाला। ईरानियों के छक्के छूट गए, आख़िर हार माननी पड़ी।

मदाइन की विजय

अब मदाइन और बहराशेर में केवल दजला नदी रुकावट

बनी हुई थी। ईरानियों ने पुल तोड़ डाला ताकि मुसलमान नदी पार न कर सकें, यद्यपि नदी में बाढ़ आई हुई थी, फिर भी साद ने यह कह कर नदी में घोड़ा डाल दिया कि 'हे ईमान वाले मुसलमानो! शत्रु ने हर ओर से विवश होकर नदी के दामन में पनाह ली है। यह मुहिम जीत लो तो फिर रास्ता साफ़ है।' यह कह कर घोड़ा नदी में डाल दिया। उनको देख कर और यह सुनकर औरों ने हिम्मत की और तत्काल सबने घोड़े नदी में डाल दिए। नदी का बहाव जोरों पर था, मौजें मुसलमानों को इधर-उधर धकेल रही थीं। मगर वे थे कि पूरे शान्त मन से अल्लाह पर भरोसा किए आगे बढ़े जा रहे थे। नदी के दूसरे तट से ईरानी सेनाएं तीरों की बारिश कर रही थीं, लेकिन यह बारिश मुसलमानों के बढ़ते प्रवाह को न रोक सकी। जब ईरानियों ने देखा कि मुसलमान बाढ़ की तरह बढ़े चले आ रहे हैं तो उनकी सेना की टुकड़ी नदी में कूद पड़ी, लेकिन मुसलमानों ने उसे बुरी तरह पराजित कर दी।

शाही परिवार को यज़्दगुर्द हलवान भेज चुका था। जब इस ज़बर्दस्त फ़ौज को देखा तो स्वयं वहां से चल दिया। अब मुसलमान बिना किसी अवरोध के शहर में दाख़िल हुए और अल्लाह का शुक्र अदा किया। शाही महल में राज-सिंहासन के बजाय मेम्बर (जिस पर खड़े जुमे की होकर नमाज़ से पहले ख़ुत्बा दिया जाता है) खड़ा कर दिया और पहली जुमा नमाज़ की बड़ी शान व शौकत के साथ इराक़ में अदा की गई।

यह एक प्रामाणिक ऐतिहासिक घटना है कि हज़रत साद (रज़ि०) ने राजमहल की मूर्तियों को न तोड़ा, बल्कि सबको पड़ा रहने दिया और उसी महल में जुमा की नमाज़ अदा की। शाही महलों का ख़ज़ाना और दूसरी ईरानी क़ीमती चीज़ें साद के सामने पेश की गईं। इनमें कुछ ऐसी अनोखी-अनोखी वस्तुएं भी थीं कि जिन्हें देखकर मानव-बुद्धि चकित रह जाती है। क़यानी सिलसिले से

लेकर नौशेरवां के समय तक की असंख्य यादगारें थीं। नौशेरवां का मणिजड़ित मुकुट, किसरा, हरमुज़ और क़िबाद के खंजर, राजा वाहर, ख़ाक़ानेचीन और बहराम की तलवारें, ये सब वस्तुएं बड़ी अद्‌भुत थीं। सोने के घोड़े और ऊँटनियां भी थीं जिन पर कसी सजाऊ ज़ीनें और पालान दर्शकों को स्तंब्ध कर देती थीं। इन चीजों के साथ-साथ एक सोने का फ़र्श था, जिस पर बैठ कर ईरानी सम्राट महफ़िले शराब गर्म किया करता था। उसमें जवाहरात, नीलम ज़मर्रुद और पुखराज के बेल-बूटे बने हुए थे। ये और इसी प्रकार के विचित्र से विचित्र सामान उन लोगों के हाथ लगे जो बद्‌दू थे। मगर उनकी ईमानदारी, सच्चाई का हाल यह था कि सब चीज़ें लाकर अपने सेनापति के आगे रख दीं। सेनापति साद भी उनकी ईमानदारी और सच्चाई से प्रभावित हुए बिना न रहे। तीस मिलियन दिरहम का लूट का माल सेना में बांट दिया गया। फ़र्श और पुरानी यादगारें, पूरी की पूरी मदीना भेज दी गईं। हज़रत उमर (रज़ि०) का विचार था कि इन सबको सुरक्षित रख लिया जाए, मगर हज़रत अली (रज़ि०) और दूसरे लोगों के सलाह व मशविरे से ये चीज़ें भी सेना में बंटवा दी गईं।

जब लूट का माल लोगों में बांटा जा रहा था तो हज़रत उमर (रज़ि०) फूट-फूटकर रो रहे थे। किसी ने कहा, यह तो प्रसन्न होने की बात है और आप रो रहे हैं। आपने उत्तर दिया कि यह धनदौलत प्रायः किसी भी क़ौम में फूट और द्वेष-भाव डाल देता है। मैं इस भय से प्रकम्पित हूं कि कहीं यह धन-सम्पत्ति हमारे लोगों को लोभ-लालच का शिकार न बना दे।

इराक़ की अन्तिम लड़ाई

इराक़ की अन्तिम लड़ाई जलूला पर सन् 16 हि० में हुई। यह बग़दाद शहर से ख़ुरासां जाते हुए रास्ते में पड़ता था। मदाइन की

हार के बाद ईरानियों ने जलूला में बड़ी ज़ोरदार तैयारियां शुरू कर दीं। सेना के कमांडर यज़ाद ने, जो रुस्तम का छोटा भाई था, शहर के चारों ओर खाई खुदवाई और हर सम्भव उपाय से युद्ध जीतने का काम लिया। साद ने इन तमाम हालात से अमीरूल मोमिनीन (मुसलमानों के अध्यक्ष) को सूचित कर दिया, वहां से आदेश मिला कि हाशिम इब्न उत्बा को बारह हज़ार सेना के साथ इस मुहिम पर भेजा जाए। सेना ने आगे बढ़कर शहर को घेर लिया। कभी-कभी ईरानी शहर से निकल कर मुसलमानों का मुकाबला करते, मगर अधिकतर किले में बन्द रहते। अस्सी दिन तक घेराव हुआ। यद्यपि इस अवधि में कई छोटी-छोटी लड़ाइयां हुईं, लेकिन दोनों पक्ष अपनी हठ पर अड़े रहे। एक दिन ईरानियों ने अचानक इस ज़ोर से हमला किया कि मुसलमानों के छक्के छूट गए। मगर संयोग कहिए या अल्लाह की मदद, ठीक उसी वक्त ज़ोर की आंधी चली कि ईरानियों को पीछे हटना पड़ा। वे घबराहट और परेशानी में उलटे पांव भागे, लेकिन आंधी ऐसी तेज़ थी कि हाथ को हाथ सुझाई न देता था, अतः हज़ारों भागते हुए खाई में गिरकर काल के गाल में समा गए। इस ख़बर से मुसलमानों में साहस पैदा हुआ और उन्होंने नारा लगाते हुए पूरे ज़ोर-शोर से हमला कर दिया। घमासान युद्ध हुआ, मुसलमान लड़ते-भिड़ते किले के दरवाज़े तक पहुंच गए और शहर में दाखिल होकर उस पर कब्ज़ा कर लिया।

जब यज़्दगुर्द को जलूला की हार की ख़बर मिली तो वह रय (ईरान) को भाग गया। मुसलमानों ने हर तरफ़ इसकी मुनादी करा दी। चूंकि यहां इराक की सीमा समाप्त हो जाती थी, इसलिए इराक़ की विजय अन्त को पहुँच गई। हर तरफ़ शान्ति की घोषणा कर दी गई। ज़ियाद ने हज़रत उमर (रज़ि०) से निवेदन किया कि वह एक भारी सेना के साथ ईरानियों का पीछा करें, मगर इसे उमर ने स्वीकार नहीं किया और कहा, मैं चाहता हूं कि हमारे और ईरानियों के बीच पहाड़ सीमा

बनाए रखें। मुझे अपने भाइयों की सुरक्षा का ख़्याल है और सुरक्षा इसी प्रकार सम्भव है कि अभी ईरानियों को उनके हाल पर छोड़ दिया जाए और जो क्षेत्र जीते जा चुके हैं, उनमें पूर्ण शान्ति स्थापित की जाए और लोगों की जान-माल की पूरी रक्षा की जाए, राज्य को सुदृढ़ बनाया जाए। इस प्रकार ईरानी हम पर हमलावर होने का विचार भी न लाएँगे।

दमिश्क़ की लड़ाई

सन् 13 हि० के आरम्भ में हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) ने सीरिया (शाम) पर कई दिशाओं से चढ़ाई की थी। आपने अबू उबैदा को हम्स पर, यज़ीद इब्न अबू सुफ़ियान को दमिश्क़ पर, शुरहबील को जार्डन पर और अम्र इब्नुल् आस को फ़िलस्तीन पर नियुक्त किया था। जब ये लोग अरब सीमा से बाहर निकले, तो उन्हें हर क़दम पर रूमियों के जत्थे मिले, जिन्होंने उनसे नियमित लड़ाइयां लड़ीं। ऐसी स्थिति में इन सब लोगों ने सलाह-मशविरे के बाद यह तय किया कि बहुत-से मोर्चों का खोलना सही नहीं है, बेहतर यही है कि शत्रु का मुक़ाबला मिल कर किया जाए, लेकिन इसके लिए ख़लीफ़ा की इजाज़त ज़रूरी थी। अतएव एक दूत आपकी सेना में इजाज़त लेने और अधिक सेनाओं के भेजने की मांग करने के लिए भेजा गया। प्रसिद्ध योद्धा व सेनापति हज़रत ख़ालिद उन दिनों इराक़ की मुहिम में लगे हुए थे। वे ख़लीफ़ा का आदेश पा कर वहां से दमिश्क़ रवाना हुए और रास्ते में छोटी-बड़ी लड़ाइयां लड़ते अजनादैन पर आ पहुँचे। क़ैसर (रूम का सम्राट) ने मुक़ाबले की ठान कर बहुत बड़े पैमाने पर जंगी तैयारियां कर रखी थीं। अजनादैन पर दोनों सेनाओं की भिड़न्त हुई। शुरहबील, यजीद और अम्र इब्नुल् आस भी वहाँ आ पहुँचे। घमासान लड़ाई हुई। मुसलमानों के तीन हज़ार सैनिक लड़ाई में शहीद हुए। रूमियों को परास्त होना पड़ा। यहाँ से छूटते ही ख़ालिद ने फिर दमिश्क़ का रुख़ किया और दमिश्क़ पहुँच कर हर ओर से नगर को घेर लिया। यद्यपि यह घेरा हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) के ख़िलाफ़त-काल में शुरू हुआ था, मगर

विजय तक पहुँचते-पहुँचते हज़रत उमर ख़लीफ़ा हो चुके थे।

दमिश्क जिसे एशिया का वीनस कहा जाता है, सीरिया राज्य का प्रसिद्धतम नगर था। चारों ओर फ़सील (सीमावर्ती ऊँची दीवारें) थीं। ख़ालिद (रज़ि०) ने तमाम द्वारों पर सेनाओं को तैनात कर दिया और पूरी तरह नगर का घेराव कर लिया। मुसलमानों का टिड्डी दल देखकर ईसाई बहुत हैरान और परेशान हुए, मुख्य रूप से इस कारण कि उनके जासूस, जो स्थिति समझने के लिए मुसलमानों की सेना में आते थे, देखते कि पूरी सेना में जोश है, हौसला है, उत्साह है। हर-हर व्यक्ति में वीरता, दृढ़ता, जमाव और निश्चय पाया जाता है। फिर भी उन्हें इस विचार से थोड़ी-सी तसल्ली होती थी कि अरब गर्म देश के रहने वाले हैं, इसलिए वे यहाँ की सर्दी सहन न कर पाएँगे, मगर जब जाड़ों में भी मुसलमानों के साहस और निश्चय में कोई अन्तर न पैदा हुआ और वे यथावत् घेरा डाले रहे, तो ईसाइयों के छक्के छूट गए। ख़ालिद (रज़ि०) ने जो एक अनुभवी सेनापति थे, भांप लिया कि दमिश्क़वासी सहायक कुमुक के इन्तिज़ार में हैं, इसलिए उन्होंने ज़ुल् कलाअ को कुछ सेना लेकर हम्स की ओर रवाना कर दिया कि अगर उस ओर से कोई कुमुक आए तो उसे रोके रखें। उनका अन्दाज़ा सही निकला और ज़ुल् कलाअ ने उस कुमुक को, जो हम्स की ओर से आई थी, रोके रखा। दमिश्क़ वालों को निराशा ही हाथ लगी।

हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) ने जासूसी की व्यवस्था बड़ी अच्छी कर रखी थी। उनके जासूस ख़बर पहुंचाने में बड़े दक्ष थे। एक दिन उन्होंने सूचना दी कि दमिश्क़ के उच्च प्रशासक के यहाँ लड़का पैदा होने की ख़ुशी में तमाम लोग उत्सव मना रहे हैं। रात को दमिश्क़ के सैनिकों ने भी शराब पी है और सायं ही से मद-मत्त होकर पड़ गए हैं। ख़ालिद ने अपने कुछ वीर साथियों के साथ मश्कों के सहारे खाई पार की और फ़सील पर चढ़ गए। द्वारपालों को क़ब्ज़े में किया

और ताले तोड़ कर फाटक खोल दिए। इधर सेना पहले से तैयार खड़ी थी, फाटकों के खुलते ही बाढ़ की तरह भीतर घुस आई और देखते ही देखते पूरे नगर पर मुसलमानों का कब्ज़ा हो गया।

अब फ़ह्ल में

दमिश्क की पसपाई के बाद रूमी काफ़ी निराश हुए। मगर एक बार उन्होंने फिर हिम्मत जुटाई, मुसलमानों से मुक़ाबले का निश्चय किया और प्रण किया कि या तो वे अरबों को नष्ट-विनष्ट करके पराजय के कलंक को मिटा देंगे या स्वतः ही अपना अस्तित्व खो बैठेंगे। इस संकल्प के बाद उनकी तैयारियां ज़ोर-शोर से शुरू हो गईं। दमिश्क की विजय के बाद मुसलमानों ने जोर्डन का रुख़ किया। रूमियों ने इस प्रान्त के प्रसिद्ध नगर बेसान में सेनाएँ एकत्रित करनी शुरू कर दीं। रूमी सम्राट हिरक़्ल की भेजी हुई वह कुमुक भी यहां आ मिली, जिन्हें ज़ुल्-क्लाअ ने रोक दिया था। इस प्रकार 30-40 हज़ार की एक भारी सेना सकलार नामक योद्धा के सेनापतित्व में मुसलमानों से मुक़ाबले के लिए तैयार आ खड़ी हुई।

यहां यह बात याद रखने की है कि उस समय सीरिया प्रान्त छः ज़िलों पर सम्मिलित था, जिनमें से दमिश्क, हम्स, जार्डन, फ़िलस्तीन प्रसिद्ध ज़िले थे। जोर्डन का हेड क्वार्टर तबरिया था, यह दमिश्क से चार मील पर स्थित है। तबरिया के पूरब में एक प्रसिद्ध झील है, जो बारह मील लम्बी है। झील से कुछ ही मील के फ़ासले पर एक छोटा-सा क़स्बा है, जिसका नाम उस समय सला था और अब फ़ह्ल है। तबरिया के दक्षिण में बेसान स्थित है। इनमें आपस की दूरी अठारह मील है।

रूमी सेनायें बेसान में एकत्रित हुईं, तो मुसलमानों ने उनके सामने फ़ह्ल में पड़ाव डाला। रूमी भयभीत थे कि मुसलमान एकाएक उनपर आ पड़ेंगे, इसलिए उन्होंने आस-पास की नहरों के

बांध तोड़ दिए, जिससे फ़ह्ल से बेसान तक पानी ही पानी हो गया। तमाम रास्ते रुक गए, मगर रूमियों की यह चाल भी मुसलमानों को आगे बढ़ने से न रोक सकी। मुसलमानों के इस साहस और दृढ़ता को देख कर ईसाई समझौता करने पर तैयार हो गए। अबू उबैदा, जो सेनापति थे, उन्होंने मुआज़ इब्न जबल को वार्ता के लिए रूमियों के पास भेजा। मुआज़ एक घोड़े पर सवार होकर शत्रु की सेना में जा पहुंचे और घोड़े से उतर कर ज़मीन पर बैठ गए। रूमियों को उनकी सादगी पर बड़ा आश्चर्य हुआ। एक व्यक्ति ने उनका घोड़ा थाम लिया और कहा कि आप अन्दर जाकर दरबार में बैठिए। उन्होंने इससे इन्कार किया। रूमियों ने चकित होकर कहा कि हम एक दूत के रूप में तुम्हारा आदर करना चाहते हैं, मगर तुम्हें इसका कुछ एहसास नहीं। हज़रत मुआज़ ने कहा कि मैं उस फ़र्श पर, जो ग़रीबों का हक छीन कर तैयार हुआ है, बैठना ही नहीं चाहता। ईसाई दुख प्रकट करने लगे और कहा कि हम लोग तो सच में तुम्हारा आदर करना चाहते थे, लेकिन तुमको स्वयं अपने आदर का ध्यान नहीं तो मजबूरी है। हज़रत मुआज़ क्रुद्ध हो उठे। घुटनों के बल खड़े हो गए और कहा कि जिसको तुम आदर समझते हो, मुझे उसकी परवाह नहीं। अगर ज़मीन पर बैठना गुलामों का कार्य है, तो मुझसे बढ़कर कौन खुदा का गुलाम हो सकता है?

रूमी उनकी उदासीनता और निर्भीकता से चकित थे, यहां तक कि एक व्यक्ति ने पूछा कि मुसलमानों में तुमसे भी कोई बढ़कर है?

उन्होंने कहा, अल्लाह की पनाह! यही बहुत है कि मैं सबसे बुरा नहीं हूं। रूमी चुप हो गए।

मुआज़ ने कुछ देर तक इन्तज़ार करने के बाद कहा, अगर तुमको मुझसे कुछ कहना नहीं है, तो मैं वापस जाता हूं।

रूमियों ने कहा, हम को यह पूछना है कि इस ओर किस उद्देश्य से आए हो। अबी सीनिया का देश तुमसे क़रीब है, फ़ारस का बादशाह मर चुका है और राज्य-सत्ता एक औरत के हाथ में है। उसको छोड़कर तुमने हमारी ओर क्यों रुख़ किया, हालांकि हमारा बादशाह सबसे बड़ा बादशाह है और तायदाद में हम आकाश के तारों और धरती के कणों के बराबर हैं?

मुआज़ ने उत्तर में कहा, सबसे पहले हमारा आह्वान है कि तुम अज्ञानता-व्यवस्था छोड़कर सत्य-धर्म और कल्याणकारी जीवन व्यवस्था इस्लाम को अपना लो, भले काम करो, बुरे काम छोड़ दो। अगर तुमने ऐसा किया तो हम तुम्हारे भाई हैं। अगर तुमने ऐसा न किया, तो इस्लाम की राजनीतिक सत्ता को स्वीकार कर ही लो। हमें टैक्स दो और हम तुम्हारी रक्षा करेंगे और अगर यह भी स्वीकार नहीं तो आगे तलवार है। अगर तुम आकाश के तारों के बराबर हो तो हमें संख्या की कमी और ज़्यादती की परवाह नहीं। तुम्हें अगर इस पर गर्व है कि तुम्हारा बादशाह बहुत बड़ा है, तो याद रखो हमने जिसको अपना बादशाह बना रखा है, वह किसी बात में भी अपने को श्रेष्ठ नहीं समझता। अगर वह ज़िना करे तो उसके दुर्रे लगाए जाएँ, चोरी करे तो हाथ काट डाले जाएँ, वह पर्दे में नहीं बैठता, अपने आपको हमसे बड़ा नहीं समझता, माल और दौलत में उसे हम पर कोई प्रमुखता नहीं। रूमियों ने कहा— 'अच्छा हम तुमको बलक़ा का ज़िला और जार्डन का वह भाग, जो तुम्हारी ज़मीन से मिला हुआ है, दिए देते हैं, तुम यह देश छोड़ कर फ़ारस जाओ।' मुआज़ ने इन्कार किया और उठ कर चले आए।

रूमियों ने स्वतः सेनापति अबू उबैदा से बातचीत करनी चाही। अतएव इस उद्देश्य से एक विशेष दूत भेजा। जिस समय वह पहुंचा, अबू उबैदा ज़मीन पर बैठे हुए थे और हाथ में तीर थे,

जिसको उलट-पलट कर रहे थे। दूत का विचार था कि सेनापति बड़े रोब-दाब से रहता होगा और इसी से वह पहचाना जाएगा, लेकिन वह जिस ओर आंख उठाकर देखता था, सब एक रंग में डूबे हुए नज़र आते थे। आख़िर घबरा कर पूछा कि तुम्हारा सरदार कौन है? लोगों ने अबू उबैदा की ओर इशारा किया। वह निस्तब्ध रह गया और आंखें फाड़-फाड़ कर उनकी ओर देखता रह गया, पूछा, क्या सचमुच तुम्हीं सरदार हो? अबू उबैदा ने कहा, 'हां।' दूत ने कहा, हम तुम्हारे प्रति सैनिक दो-दो अशर्फ़ी देंगे। तुम यहां से चले जाओ। सेनापति अबू उबैदा ने साफ़ इन्कार कर दिया और पूरी घटना से ख़लीफ़ा को सूचित कर दिया।

हज़रत उमर ने उचित उत्तर लिख दिया और हौसला दिलाया कि दृढ़ता से जमे रहो, अल्लाह तुम्हारा यार और मददगार है।

अबू उबैदा ने उसी दिन सेना को तैयार रहने का आदेश दे दिया था, लेकिन मुकाबले में न आए। दो दिन के बाद ख़ालिद मैदान से निकले। कुछ सैनिक उनके साथ थे। रूमियों ने तीन टुकड़ियां उनके मुकाबले के लिए भेज दीं। यह देखकर मुसलमानों की भी कुछ टुकड़ियां मदद के लिए आ मौजूद हुईं। युद्ध छिड़ गया। मुसलमान जम कर लड़े और उनकी दृढ़ता को देख रूमी घबड़ा गए। ख़ालिद की दूरगामी निगाहों ने भांप लिया कि रूमी मुसलमानों के मुकाबले का साहस नहीं रखते, अतः सेना में ऐलान करा दिया गया कि अगले दिन निर्णायक लड़ाई होगी।

प्रातः ही अबू उबैदा ने सेना को तैयार किया। रूमियों की संख्या पचास हज़ार थी। उन्होंने भी अपनी सेना को पंक्तियों में विभाजित करके दाहिने-बाएं सरदार और सैनिक जमा किए। लड़ाई शुरू हो गई। रूमी धनुर्धरों ने इतनी अधिकता से वाण-वर्षा की कि मुसलमानों को पीछे हटना पड़ा। रूमी सेना मुसलमानों की मध्यम

पंक्ति को पीछे धकेलते हुए अपनी सेना से दूर निकल आइ, तो मौके को बेहतर जान कर इस पंक्ति के कमांडर खालिद ने इस तरह पासा बदला कि रूमी पंक्ति की पंक्ति साफ हो गई। रूमियों के ग्यारह सरदार उनके हाथों मारे गए। धनुष-वाण के वाद तलवारों की बारी आ गई। आखिर रूमियों के पैर उखड़ गए और वे उलटे पांव भागे। थोड़ी देर में मैदान साफ़ हो गया, फ़ह्ल पर मुसलमानों का अधिकार हो गया।

हज़रत अबू उबैदा ने हज़रत उमर (रज़ि०) के आदेशानुसार आम एलान कर दिया कि लोगों की जान-माल की रक्षा करना सरकार का प्रथम कर्त्तव्य होगा और ज़मीन यथावत् ज़मींदारों के कब्ज़े में रहेगी।

इस विजय के बाद जार्डन ज़िले की दूसरी जगहें आसानी के साथ जीत ली गईं। विजित क्षेत्र के निवासियों की जान व माल, गिरजे, मकान, ज़मीनें सुरक्षित रखी गईं और किसी चीज़ को छेड़ा नहीं गया, केवल मस्जिदों के लिए कुछ ज़मीन ली गई, लेकिन उसका मूल्य सरकार की ओर से नियमित रूप से अदा कर दिया गया।

हम्स की विजय

हम्स को अंग्रेज़ी में अमीसिया कहते हैं। यह वही नगर है, जहां हिरक्ल के भाई थ्यूडर ने अकेले शरण लिया था। सीरिया के नगरों में से दमिश्क और जोर्डन पर विजय प्राप्त की जा चुकी थी। बाकी बैतुलमक्दिस, हम्स और अन्ताकिया बच रहे थे। अन्ताकिया में हिरक्ल स्वतः ठहरा हुआ था। फ़ह्ल की विजय के बाद मुसलमानों ने हम्स की तरफ़ रुख़ किया। रास्ते में बालबक को बड़ी आसानी से मुसलमानों ने जीत लिया।

जब इस्लामी सेनाएं हम्स के पास पहुंचीं तो रूमियों ने बाहर

निकल कर मुसलमानों का मुक़ाबला जोसिया नामक स्थान पर किया। ख़ालिद के पहले ही हमले ने रूमियों की हालत को नाज़ुक बना दिया और वे भाग निकले। मुसलमानों ने आगे बढ़ कर हम्स को घेर लिया। रूमियों का विचार था कि मुसलमान सर्दी के कारण अधिक समय तक उनका मुक़ाबला न कर सकेंगे, इसके साथ ही हिरक्ल का दूत आ चुका था कि बहुत जल्द कुमुक भेजी जा रही है, अतः इस हुक्म के मुताबिक़ एक बड़ी सेना भेजी भी गई, लेकिन साद इब्न अबी वक़्क़ास ने, जो इराक़ की मुहिम में लगे हुए थे, ख़बर सुनकर कुछ सेनाएं भेज दीं, जिसने उनको वहीं रोक लिया और आगे न बढ़ने दिया, आख़िर मुसलमानों के ज़बर्दस्त घेराव और कुमुक न पहुंचने की निराशा ने हम्स वालों को विवश कर दिया कि वे समझौते की प्रार्थना करें, इसे स्वीकृति दे दी गई।

हम्स का प्रबन्ध करके अबू उबैदा स्वयं हमात की ओर बढ़े। हमात वालों ने हथियार डाल दिया और जिज़िया देना मंज़ूर कर लिया। इसके बाद शीराज़ और मरंतुन्नोमान आए। यहां भी लोगों ने बिना लड़ाई के अधीनता स्वीकार कर ली। वहां से अमानसा पहुंचे और क़िले को घेर लिया, लेकिन क़िला इतना मज़बूत था कि उस पर विजय पाना सम्भव न हो रहा था। आख़िर अबू उबैदा (रज़ि०) ने बड़ी सावधानी के साथ, कुछ दूरी पर गड्ढे खुदवाए और रात के समय अपनी सेना को इन गड्ढों में छिपा दिया। सुबह के समय नगर वालों ने देखा कि मुसलमानों की सेना का दूर-दूर तक पता नहीं, तो बड़े प्रसन्न हुए और समझे कि दुश्मन अब घर चले गए। हर्षित हो नगर के समस्त द्वार खोल डाले। मुसलमानों की सेनाएँ इसी इन्तज़ार में थीं ही, गड्ढों से निकल कर नगर पर पूरे ज़ोर से हल्ला बोल दिया और 'अल्लाहु अकबर' के नारे आसमान में गूँज उठे।

जब हम्स के पूरे ज़िले पर विजय पा ली गई तो अबू उबैदा ने हिरक़्ल की राजधानी पर चढ़ाई करने का इरादा किया, मगर ख़लीफ़ा ने आदेश दे दिया कि इस साल और आगे बढ़ने का इरादा न किया जाए। अतः हज़रत उमर (रज़ि०) के आदेशानुसार सेना को आगे बढ़ने से रोक दिया गया और बड़े-बड़े नगरों में अफ़सर और नायब भेज दिए गए ताकि वहां किसी प्रकार की कोई गड़बड़ी न होने पाए। हज़रत ख़ालिद एक हज़ार की सेना लेकर दमिश्क़ की ओर चले गए और अबू उबैदा हम्स ही में ठहरे रहे।

यरमूक की लड़ाई

रूमी, जो परास्त होकर दमिश्क व हम्स आदि की ओर से भागे थे, अन्ताकिया पहुंचे और हिरक़्ल से फ़रियाद की कि अरब ने समूचे सीरिया को जीत लिया है, इसलिए उसे चाहिए कि वह अपनी इन हारों का बदला ले, ताकि जनता को शर्मिन्दा होने और देश को नष्ट होने से बचाया जा सके।

रूमी सम्राट क़ैसर उन दिनों अन्ताकिया में ठहरा हुआ था। वह निराश होकर फ़ैसला कर चुका था कि सीरिया को अरबों के हवाले करके स्वयं देश से निकल जाए। लेकिन जब जनता ने बहुत ज़ोर डाला तो उसने अपने सरदारों और परामर्शदाताओं से परामर्श लिया और कहा कि अरब तुम से शक्ति में, संख्या में, हथियारों और सामानों में कम हैं। फिर तुम उनके मुक़ाबले में क्यों नहीं ठहर सकते। इस पर सबने लज्जित हो सिर झुका लिया और किसी से कोई उत्तर न बन पड़ा।

लेकिन एक अनुभवी बूढ़े जरनैल ने साहस के साथ कहना शुरू किया, 'अरब का आचरण हमारे आचरण से अच्छा है, वे रात को इबादत करते हैं, दिन को रोज़े रखते हैं, किसी पर ज़ुल्म नहीं करते, कोई भेद-भाव नहीं करते, बराबरी का बर्ताव करते हैं, जबकि हमारा हाल यह है कि हम शराब पीते हैं, बुरे काम करते हैं, वायदों का ख़्याल नहीं करते, औरों पर ज़ुल्म करते हैं— यही कारण है कि उनके हर काम में साहस, जमाव और हौसला पाया जाता है और हमारे सभी काम इस प्रकार के गुणों से ख़ाली होते हैं।

क़ैसर यह भाषण सुनकर तड़प उठा और उसने बड़े जोश में आकर लड़ाई का आदेश दे दिया कि कुस्तुनतुनिया, रूस और आरमीनिया से एक निश्चित तिथि तक भारी संख्या में सेनाएँ अन्ताकिया को पहुंच जाएँ। तमाम ज़िलों के अफ़सरों को लिख भेजा कि जितने भी आदमी जहां से मिल सकें, सेना में भर्ती करके यहां भेज दिए जाएं। इन आदेशों का पहुंचना था कि सेनाओं का एक तूफ़ान उमड़ आया। अन्ताकिया के चारों ओर जहां तक दृष्टि जाती थी, सेनाओं का टिड्डी दल फैला हुआ था।

हज़रत अबू उबैदा ने जिन स्थानों पर विजय प्राप्त की थी, वहां के सरदार और ज़िम्मेदार उनके न्याय और इन्साफ़ से इतने प्रभावित हुए थे कि धर्म की भिन्नता के बावजूद स्वयं अपनी ओर से दुश्मन की ख़बर लाने के लिए जासूस नियुक्त कर रखे थे। अतएव उनके ज़रिए हज़रत अबू उबैदा को तमाम बातों की सूचना मिली। उन्होंने तमाम अफ़सरों और जनरलों को जमा किया और खड़े होकर ज़ोरदार भाषण दिया, और कहा— मुसलमानो! खुदा ने तुमको बराबर जांचा और तुम उसकी जांच में पूरे उतरे। अतः खुदा ने हमेशा तुमको कामियाब व सुर्ख़रू किया। अब तुम्हारा दुश्मन इस तैयारी से तुम्हारे मुकाबले के लिए चला है कि धरती कांप उठी है, अब बताओ क्या मशविरा है?

यज़ीद इब्न अबी सुफ़ियान (हज़रत मुआविया के भाई) खड़े हुए और कहा कि मेरी राय है कि औरतों और बच्चों को नगर में रहने दें और हम स्वयं नगर के बाहर युद्ध के लिए पंक्तिबद्ध हो जाएँ। इसके साथ ही ख़ालिद और अम्र इब्न आस को पत्र लिखा जाए कि दमिश्क़ और फ़िलस्तीन से चलकर सहायता को पहुंच जाएँ।

शुरहबील इब्न हसना ने इस प्रस्ताव का प्रबल विरोध किया

और कहा, निस्सन्देह मेरे भाई ने अच्छी नीयत और भले का विचार करके ही यह मत व्यक्त किया है, लेकिन मैं इस मत से असहमत हूं। नगर वाले सबके सब ईसाई हैं, हो सकता है, वे साम्प्रदायिक भावना से प्रेरित हो हमारे बाल-बच्चों को पकड़ कर कैसर के हवाले कर दें या खुद मार डालें।

हज़रत अबू उबैदा ने कहा, इसका उपाय यह है कि हम ईसाइयों को ही नगर से निकाल दें।

शुरहबील को सेनापति का यह प्रस्ताव भी उचित न जान पड़ा, उन्होंने तत्काल कहा, श्रीमान, 'हम मुसलमान हैं, हमने इन्हें वचन दिया था कि वे नगर में शान्ति के साथ रहें। आख़िर हम अब किस तरह वचन-भंग करेंगे?'

हज़रत अबू उबैदा ने अपनी ग़लती स्वीकार कर ली। लेकिन यह बात तय न हो सकी कि क्या किया जाए। अधिकांश उपस्थित जनों की राय थी कि हम्स में ठहर कर कुमुक का इन्तिज़ार किया जाए। अबू उबैदा ने कहा; इतना समय कहाँ है? आख़िर इस पर सब सहमत हो गए कि हम्स छोड़कर दमिश्क़ चला जाए। वहां ख़ालिद मौजूद हैं और वहाँ से अरब सीमाएँ भी क़रीब हैं। जब यह बात तय हो चुकी, तो हज़रत अबू उबैदा ने हबीब इब्न मुस्लिमा को जो वित्त अधिकारी थे, बुलाकर कहा कि ईसाइयों से जो जिज़्या या टैक्स लिया जाता है, इस बदले में लिया जाता है कि हम उनको उनके दुश्मनों से बचा सकें, लेकिन इस समय हमारी स्थिति ऐसी नहीं है कि हम उनकी सुरक्षा कर सकें। इसलिए उन से जो कुछ वसूल हुआ है, सब उनको वापस दे दो और उनसे कह दो कि हमको तुम्हारे साथ जो लगाव था, अब भी है, लेकिन चूंकि हम इस समय तुम्हारी रक्षा की ज़िम्मेदारी लेने की स्थिति में नहीं हैं, इसलिए जिज़्या, जो रक्षा का मुआवज़ा है, तुमको वापस किया जाता है। चुनांचे कई

लाख की जो रक़म वसूल हुई थी, कुल वापस कर दी गई। ईसाइयों पर इस बात का इतना प्रभाव पड़ा कि वे रोते जाते थे और कहते थे कि खुदा तुमको वापस लाए। हमने तुम्हारे युग में बड़ा आराम उठाया है, हम क़सम खाकर कहते हैं कि हम हरगिज़ कैसर को इस नगर पर क़ब्ज़ा न करने देंगे। तुम ऐसे शासकों का मिलना असम्भव है। यहूदियों पर तो इससे अधिक प्रभाव था। उन्होंने तौरात की क़सम खा कर कहा था कि 'जब तक हम ज़िन्दा हैं, कैसर हम्स पर क़ब्ज़ा नहीं कर सकता।' यह कह कर उन्होंने तमाम दरवाज़ों को बन्द कर लिया और चौकी-पहरा बिठा दिया।

अबू उबैदा ने सिर्फ़ हम्स वालों के साथ ही यह बर्ताव नहीं किया, बल्कि जितने भी ज़िलों पर विजय प्राप्त की जा चुकी थी, हर जगह लिख भेजा कि जिज़्या की जितनी भी रक़म वसूल हुई है, वापस कर दी जाए।

तात्पर्य यह है कि अबू उबैदा दमिश्क़ को रवाना हुए और इन तमाम हालात की हज़रत उमर को सूचना दी। हज़रत उमर (रज़ि०) यह सुनकर कि मुसलमान रूमियों के डर से हम्स चले आए, बड़े दुखी हुए। लेकिन जब उनको यह मालूम हुआ कि कुल सेना और सेना के अफ़सरों ने यही निर्णय किया तो कुछ तसल्ली हुई और अबू उबैदा को उत्तर लिखा कि 'मैं सहायता के लिए सईद इब्न आमिर को भेजता हूं, लेकिन याद रखो कि विजय व पराजय सेना की तायदाद की कमी-बेशी पर आश्रित नहीं हुआ करती।'

अबू उबैदा ने दमिश्क़ पहुंचकर तमाम अफ़सरों को जमा किया और उनसे मशविरा किया। अफ़सरों ने भरसक अपनी-अपनी राय पेश कर दी। इसी बीच हज़रत अम्र इब्न आस का दूत पत्र लेकर पहुंच गया, जिसमें लिखा हुआ था कि आपने हम्स छोड़कर भारी ग़लती की है और इससे हमारी प्रतिष्ठा को बहुत ठेस

लगी है। अबू उबैदा ने उत्तर में अम्र इब्ने आस को लिखा कि हमने एक मोर्चा खोलने के लिए हम्स को छोड़ा है, तुम हमसे यरमूक में मिलो।

दूसरे दिन हज़रत अबू उबैदा दमिश्क से रवाना हो गए और जोर्डन की सीमाओं से यरमूक पहुंचकर रुक गए। अम्र इब्ने आस भी यहीं आकर मिले।

रूमी सेनाएँ बड़ी शान के साथ यरमूक की ओर बढ़ रही थीं। मुसलमानों के ख़िलाफ़ उनमें बहुत ज़्यादा उत्तेजना थी, उल्लास और उत्साह भी बहुत था। उनके उत्साह का हाल यह था कि सेना जिस रास्ते से गुज़रती थी, वहां के ईसाई पादरी और सन्यासी— कलीसा (गिरजाघर) और मठों को छोड़ कर सेना में आकर मिल जाते थे।

जब मुसलमानों को इन बातों का पता चला, तो उनका घबरा उठना स्वाभाविक था। हज़रत अबू उबैदा ने तुरन्त ख़लीफ़ा उमर को सूचना दी। सूचना पहुंचते ही हज़रत उमर (रज़ि०) ने मुहाजिरों और अन्सारियों को जमा किया और उन्हें पूरी बात बताई। तमाम मुसलमान बे-अख़्तियार रो पड़े और बड़े जोश के साथ पुकार कर कहा, 'अमीरुल मोमिनीन! ख़ुदा के लिए हमको इजाज़त दे दीजिए कि हम अपने भाइयों पर अपने को क़ुर्बान कर दें। आम राय यही थी कि ख़लीफ़ा को स्वयं इस मुहिम में शामिल होना चाहिए, मगर सोच-विचार के बाद यही तय हुआ कि एक भारी सेना तत्काल मुसलमानों की सहायता के लिए भेजी जाए, लेकिन ख़लीफ़ा का जाना उचित नहीं। हज़रत उमर (रज़ि०) ने सूचना लाने वाले दूत से पूछा कि रूमी यरमूक से कितने फ़ासले पर हैं। जब दूत ने बताया कि केवल तीन-चार मंजिल के फ़ासले पर, तो आप थोड़े से परेशान हुए और कहा, अफ़सोस! समय इतना थोड़ा है कि सहायता का

पहुंचना लगभग असम्भव है। आखिर अबू उबैदा के नाम एक प्रभावपूर्ण पत्र लिखा और हिदायत की कि हर क्षेत्र में इसे पढ़कर प्रसारित कर दिया जाए।

यह विचित्र संयोग था कि जिस दिन दूत अबू उबैदा के पास आया, उसी दिन आमिर भी हज़ार व्यक्तियों के साथ पहुंच गए। फिर क्या था, पूरे जमाव के साथ मुसलमानों ने भी लड़ाई की तैयारियां शुरू कर दीं।

रूमी सेनाओं ने दैरुल-जबल में डेरे डाले थे। यह पर्वतीय क्षेत्र यरमूक के ठीक सामने था। सेनाधिकारी ख़ालिद ने लड़ाई की तैयारियां शुरू कीं, कुल सेना को चार भागों में बांट दिया। एक भाग का नेतृत्व अपने पास रखा, शेष भागों पर दूसरे प्रसिद्ध जनरलों को नियुक्त किया।

रूमी सेना में दो लाख से भी अधिक सैनिक थे। उन्होंने अपनी सेना को कई टुकड़ियों में बाँट रखा था। हर टुकड़ी के आगे पादरी सन्यासी थे। वे हाथों में सलीबें लिए हुए सेना में उत्तेजना पैदा कर रहे थे और तौरात व इंजील से सूक्तों को पढ़-पढ़ कर सैनिकों को लड़ने-मरने पर उभार रहे थे।

जब दोनों सेनाएँ एक-दूसरे के मुक़ाबले में आ गईं, तो एक वीर योद्धा रूमी ज़नरल आगे बढ़ा और कहा, क्या मुसलमानों में कोई है जो मुझ से भिड़ सके। उधर से क़ैस बिजली की तरह निकले और एक व्यक्ति को, जो उनसे पहले निकल चुका था, रोक कर रूमी जनरल के मुक़ाबले में आ डटे। अभी रूमी जनरल अपने हथियार संभालने भी न पाया था कि क़ैस ने पूरे ज़ोर से हमला किया और उसका सिर धड़ से जुदा हो गया। फिर क्या था घमासान युद्ध शुरू हो गया, यह सिलसिला रात अंधेरे तक चलता रहा और रात आई कि लड़ाई बन्द हो गई।

उसी रात रूमियों ने आपस में मशविरा करके यह बात तय की कि अरबों का मुक़ाबला कोई आसान काम नहीं है, इसलिए बेहतर है कि उन्हें लोभ दिलाकर वापस कर दिया जाए। अगले दिन एक जार्ज नामक व्यक्ति मुसलमानों के पास भेजा गया, ताकि इस प्रस्ताव को व्यावहारिक रूप देने के लिए मुसलमानों का एक दूत अपने साथ लाए। जार्ज ने बात करते-करते सेनापति से पूछा, 'आप लोग मसीह को क्या समझते हैं?' उन्होंने जवाब दिया, 'हम उन्हें खुदा का सच्चा नबी मानते हैं।' इस सीधी और सच्ची बात का जार्ज पर इतना प्रभाव पड़ा कि वह मुसलमान हो गया और वापस जाने से साफ़ इन्कार कर दिया। मगर अबू उबैदा ने कहा, आप दूत हैं और मुसलमान किसी स्थिति में भी वचन-भंग नहीं कर सकते। अतएव उन्हें समझा कर वापस कर दिया। उससे अगले दिन यह निश्चय हुआ कि ख़ालिद रूमियों की सेना में जाकर उनसे बातचीत करें।

दूसरे दिन ख़ालिद रूमियों के सैनिक पड़ाव पर गए। रूमियों ने अपना रौब डालने के लिए पहले से यह प्रबन्ध कर रखा था कि रास्ते के दोनों ओर दूर तक सवारों की पंक्तियां बना रखी थीं, ये सवार सिर से पांव तक लौह-कवच धारी थे। लेकिन हज़रत ख़ालिद पूरी उदासीनता के साथ और इनको कोई महत्व न देते हुए आगे बढ़ गए, जैसे शेर बकरियों के रेवड़ को चीरता चला जाता है।

रूमी सेनापति बाहान के पास पहुंच कर हज़रत ख़ालिद ने बातचीत शुरू कर दी। सबसे पहले रूमी सेनापति ने भाषण के रूप में कहना आरम्भ किया। हज़रत ईसा (अलै०) का गुणगान करने के बाद कैसर की प्रशंसा की और गर्व से कहा कि हमारा बादशाह तमाम बादशाहों का बादशाह (सम्राट) है।

हज़रत ख़ालिद तुरन्त बोल पड़े, 'तुम्हारा बादशाह ऐसा ही होगा, लेकिन हमने जिसको सरदार बना रखा है, उसे एक क्षण के

लिए अगर बादशाही का ध्यान आए तो हम तुरन्त उसे पदच्युत कर दें।'

बाहान ने फिर कहना शुरू कर दिया, 'हे अरब! तुम्हारी क़ौम के जो लोग हमारे देश में आकर आबाद हुए, हमने सदैव उनसे मैत्री भाव रखा। हमारा विचार था कि इन सुविधाओं के प्रति पूरा अरब आभारी होगा, लेकिन आशा के विपरीत तुम लोग हमारे देश पर चढ़ आए और चाहते हो कि हमको हमारे देश से निकाल दो। तुम शायद नहीं जानते कि बहुत-सी क़ौमों ने अनेक बार ऐसे इरादे किए, लेकिन कभी सफल न हुईं। अब तुमको कि तमाम दुनिया में तुमसे अधिक कोई भी क़ौम अनपढ़ बर्बर और जंगली नहीं, यह हौसला हुआ है। हम इस पर भी तुम्हारे ऊपर दया करते हैं। बल्कि अगर तुम यहां से चले जाओ तो पुरस्कार स्वरूप सेनापति को दस हजार दीनार और तुम्हारे अफ़सरों को एक-एक हज़ार और तुम्हारे सैनिकों को सौ दीनार प्रति सिपाही देंगे।'

जब बाहान अपना भाषण समाप्त कर चुका तो ख़ालिद ने कहा कि निस्सन्देह तुम बुद्धिमान हो, धनवान हो, सत्तावान हो, तुमने अपने पड़ोसी देशों के साथ जो कुछ किया, वह भी हमें मालूम है। लेकिन यह तुम्हारा कुछ उपकार न था बल्कि धर्म-प्रचार का तरीक़ा था, जिसका प्रभाव यह पड़ा कि वे ईसाई हो गए और आज स्वयं हमारे मुक़ाबले में तुम्हारे साथ होकर हमसे लड़ते हैं। यह सच है कि हम मुहताज, तंगदस्त और बद्दू थे। हमारा हाल यह था हमारा शक्तिवान हमारे निःशक्ति को पीसे डालता था, कबीले आपस में लड़-लड़ कर नष्ट हो जाते थे। हमने अपने हाथ से बहुत-सी मूर्तियों को गढ़ कर उन्हें अपना उपास्य बना रखा था, हम इतने अन्धविश्वासी थे कि ज़िन्दा इन्सानों को बलि की वेदी पर भेंट चढ़ा दिया करते थे, लेकिन अल्लाह ने हम पर दया की और एक पैग़म्बर भेजा, जो स्वयं हममें से था। वह हम सबसे ज़्यादा शरीफ़, दानी,

सच्चा और सदाचारी था। उसने हमें तौहीद (एकेश्वरवाद) का पाठ पढ़ाया और बताया कि अल्लाह एक है, उसका कोई साझी नहीं। उसने हमें आदेश दिया कि हम इन बातों को पूरी दुनिया के सामने रखें। जिसने हमारे रसूल और उसकी शिक्षा को माना, वह मुसलमान है और हमारा भाई है, लेकिन जो हमारे धर्म को पसन्द न करे और जिज़्या देना स्वीकार करे तो हम उसके समर्थक और संरक्षक बन जाते हैं और जो इन दो बातों से इन्कार करे उसके लिए तलवार है, जो हम दोनों में निर्णय कर देगी।

लेकिन ये बातें बाहान और उसके सरदारों को क्यों पसन्द आतीं। समझौते की आशाएं धूमिल हो गईं और हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) वापस चले आए।

दूसरे दिन रूमी सेनाएँ इस आनबान से निकलीं कि ख़ालिद जैसा योद्धा भी आतंकित और प्रभावित हुए बिना न रह सका। फिर भी ख़ालिद ने पूरी बुद्धिमानी से काम किया। अरबों की सेना चालीस हज़ार थी, उनकी चालीस पंक्तियां बनाईं और हर पंक्ति के सिरे पर एक-एक वक्ता नियुक्त किया, जो लोगों का धर्म-उत्साह बढ़ाता था। अबू सुफ़ियान और अम्र इब्न आस भी प्रभावपूर्ण शब्दों में लोगों की वीरता और साहस को उभार रहे थे। इस लड़ाई में मुसलमान औरतें भी मर्दों के कन्धे से कन्धा मिलाकर शत्रुओं से लड़ रही थीं। अमीर मुआविया की मां और बहन बिजली की तरह घूम रहीं थीं। वे इस वीरता से लड़ीं कि अब तक उनकी वीरता की कथा प्रचलित है।

रूमियों का उत्साह हर क्षण बढ़ता जा रहा था। दो लाख रूमी एक साथ आगे बढ़े। उन्होंने तीस हज़ार सिपाहियों को बेड़ियां पहना रखी थीं, ताकि उनके मन में पीछे हटने का विचार तक न आए। लड़ाई शुरू हुई। रूमियों के बाणों ने मुसलमानों की पंक्तियों को चीर डाला और उनके क़दम उखड़ गए। औरतें पिछले भाग में थीं।

उन्होंने तम्बुओं के खूंटे उखाड़ डाले और कहा कि अगर तुम लोग पीछे हटे, तो हम तुम्हें खूंटों से मार डालेंगी। उनका यह उत्साह देखकर मुआज़ इब्ने जबल और उनका लड़का रूमियों की सेना में घुस गए और लोगों ने भी उनका पालन किया। उनके हौसले को देखकर पूरी सेना जैसे जाग-सी गई हो, उखड़ते हुए कदम फिर जम गए। हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) ने मौके को ग़नीमत जान अपनी टुकड़ी को आगे बढ़ा दिया और पूरी शक्ति के साथ शत्रु-सेना पर टूट पड़े। हर ओर सैकड़ों हाथ, बाज़ू-गरदनें कट-कट कर गिर रही थीं, ऐसा लगता था, मानो मदारी का कोई तमाशा है। इसी बीच इक्रिमा ने पुकारा, 'कौन है जो मरने का प्रण करे?' तुरन्त जान पर खेल जाने वाले 400 योद्धाओं ने मरने का प्रण किया और इक्रिमा के साथ इतनी वीरता के साथ लड़े कि यद्यपि कट-कट कर वहीं ढेर हो गए, लेकिन रूमियों के हज़ारों वीरों को भी साथ लेते गए।

लड़ाई घमासान की चल रही थी। हां, यह फ़ैसला करना मुश्किल था कि ऊंट किस करवट बैठेगा। प्रत्यक्षतः रूमियों का पल्ला भारी था, उनकी तायदाद मुसलमानों के मुकाबले में कहीं अधिक थी, उन के हथियार भी अच्छे थे और अधिक भी। पादरी उनको मसीह का वास्ता दिलाकर उनमें धार्मिक उत्साह भी पैदा कर रहे थे, फिर भी मुसलमानों का उत्साह, निछावर हो जाने की भावना और लड़ने-मरने का हौसला देखकर उनकी विजय की आशा की जा सकती थी। सईद इब्न ज़ैद ने कई अफ़सरों को मार डाला। शुरहबील रूमियों के बीच में घिरे हुए थे, मगर उनका साहस और जमाव अनुपम था। वे बड़े जोश के साथ अपने साथियों को उभार रहे थे।

रूमी सेनाएं बढ़ी आ रही थीं, मगर मुसलमानों के आसमान सिर पर उठा लेने वाले नारों ने उनकी बढ़ती हुई रफ़्तार को रोक दिया। अचानक कैस इब्न हियरा ने, जो पिछली तरफ़ थे, धावा

बोल दिया और इस तेज़ी से हमला किया कि रूमियों के बढ़ते क़दम ही नहीं रुके, बल्कि उखड़ भी गए। वह उनको धकेलते हुए एक नाले तक ले गए। सईद इब्न ज़ैद ने भी क़ैस का अनुपालन किया। नाले के पास ही इतनी घमासान लड़ाई हुई कि नाला लाशों से पट गया, रूमियों के क़दम उखड़ गए और वे घबड़ाकर मैदान से भाग निकले।

कहा जा सकता है कि इस युद्ध में मरने वाले रूमी सैनिकों की तायदाद एक लाख से भी अधिक थी।

जब क़ैसर (रूमी सम्राट) को अन्ताकिया में रूमी पराजय की सूचना मिली, तो उसे बड़ा क्रोध आया, पर वह कर ही क्या सकता था? रही-सही सेनाओं को समेट कर वह कुस्तुन्तुनिया की ओर चला गया।

हज़रत अबू उबैदा ने ख़लीफ़ा उमर (रज़ि०) को विजय की सूचना दी। जब हज़रत उमर (रज़ि०) ने सुना तो वह तुरन्त वास्तविक स्वामी अल्लाह के समक्ष नतमस्तक हो गए और उसका शुक्र अदा किया।

जब यहां सब कुछ शान्त हो गया तो अबू उबैदा हम्स की ओर फिर लौटे और ख़ालिद को कन्सरीन की ओर बढ़ने का आदेश दिया। नगर वालों ने जिज़िया देना स्वीकार कर लिया।

अबू उबैदा अपनी सेनाओं को लिए कल्ब की ओर बढ़े। वहां भी लोगों ने जिज़या देना स्वीकार कर लिया, लेकिन कुछ ही दिनों में मुसलमानों का आदर्श-चरित्र और सद्व्यवहार देखकर और इस्लाम के गुणों का परिचय पा लेने के बाद सभी ने इस्लाम स्वीकार करने का ऐलान कर दिया।

अबू उबैदा वहां से अन्ताकिया पहुंचे। यह वही नगर है, जहां क़ैसर स्वयं ठहरा हुआ था। चूंकि यह शाम (सीरिया) की राजधानी

थी, इसलिए सुरक्षित और सुदृढ़ नगर समझा जाता था। हज़रत अबू उबैदा ने चारों ओर से नगर को घेर लिया। थोड़े दिनों के बाद नगरवासियों ने तंग आकर मुसलमानों से संधि कर ली। इस विजय से मुसलमानों की धाक बैठ गई और मुस्लिम सेना अधिकारियों ने थोड़े-से सैनिकों के साथ आस-पास के नगरों पर विजय प्राप्त कर ली।

बैतुलमक्दिस में

बैतुलमक्दिस कई दृष्टि से मुसलमानों के लिए विशेष महत्व रखता है। यह यहूदी और ईसाई मतावलम्बियों का केन्द्र-बिन्दु है और मुसलमान, उन तमाम नबियों पर, जो इन दोनों समूहों में आए, ईमान रखते हैं। इसके अलावा यह वह जगह है, जो मुसलमानों का किबला रहा और जिसकी ओर रुख़ करके मुसलमान नमाज़ें अदा करते रहे।

कन्सरीन की विजय के बाद ख़लीफ़ा के आदेशानुसार हज़रत अबू उबैदा ने इस्लामी सेनाओं का रुख़ बैतुलमक्दिस की ओर किया। मुसलमानों का रोब दूर-दूर तक छा चुका था, इसलिए ईसाइयों ने तुरन्त समझौता कर लेना चाहा, मगर शर्त यह थी कि अमीरुल मोमिनीन स्वतः आकर अपने हाथ से सन्धि-पत्र तैयार करें। जब हज़रत उमर (रज़ि०) को यह बात मालूम हुई तो पहले तो आपको आने में संकोच हुआ,फिर मशविरे से यही तय पाया कि हज़रत उमर (रज़ि०) का बैतुलमक्दिस जाना अत्यावश्यक और महत्वपूर्ण है। अतः हज़रत अली (रज़ि०) को अपना स्थानापन्न बनाकर 03 रजब को आप मदीना से रवाना हुए।

जाबिया में मुसलमान सरदारों और जनरलों ने हज़रत उमर (रज़ि०) का स्वागत किया। उनके तड़क-भड़क कपड़ों को देखकर हज़रत उमर (रज़ि०) अति रुष्ट हुए और बड़ा दुख प्रकट करते हुए

उन पर कंकरियां फेंकी। उन सब ने एक साथ मिलकर उन्हें विश्वास दिलाया कि हम सबने कपड़ों के नीचे फ़ौज़ी हथियार पहन रखे हैं, फिर निवेदन करते हुए कहा कि शत्रु पर रोब बिठाने के लिए यह ज़रूरी है कि हुज़ूर भी अपना वस्त्र बदल लें। इतना सुनकर हज़रत उमर का गला रुंध आया और फ़रमाया, तुम्हें मालूम नहीं हम अनजान, अज्ञानी और मूर्तिपूजक थे। अल्लाह ने हमें इस्लाम की दौलत से मालामाल किया, क्या यह काफ़ी नहीं कि हम उसका शुक्र अदा करें और उसी से पतन-गर्त में न गिरने की दुआ करें।

ईसाइयों के सरदार के साथ अमीरुल मोमिनीन ने नगर का मुआयना किया और विभिन्न स्थानों की सैर की। उसी समय की एक घटना है, वे एक गिरिजाघर को देख रहे थे कि नमाज़ का वक़्त हो गया। ईसाई सरदार ने निवेदन किया, हुज़ूर! नमाज़ अदा कर लें। हज़रत उमर (रज़ि०) ने इंकार कर दिया और फ़रमाया कि अगर आज मैं यहां नमाज़ अदा करूँ तो सम्भव है कि मुसलमान इस विचार से कि यहां एक वक़्त नमाज़ अदा की गई थी, गिरजाघर पर कब्ज़ा करने की कोशिश करें। इस विचार से अमीरुल मोमिनीन ने एक दस्तावेज एक और गिरिजा के पादरी को लिख दी कि 'एक वक़्त में एक मुसलमान से अधिक इस गिरजाघर में दाख़िल नहीं हो सकते।'

जाबिया में, मुसलमानों और ईसाइयों के बीच जो समझौता हुआ, वह इस बात की खुली दलील है कि मुसलमानों ने विजित क़ौमों के साथ बड़ी ही उदारता का प्रमाण दिया है। समझौता इस प्रकार था :—

'अल्लाह का बन्दा अमीरुल मोमिनीन उमर अल्लाह की दया और कृपा से बैतुल मक़्दिस के लोगों के साथ निम्न समझौता करता है :

1. वह इन्हें विश्वास दिलाता है कि इनकी जानें, जायदादें, इन की इबादतगाहें, इनके गिरजे, इनकी सलीबें, जिनका वे आदर करते हैं, हर प्रकार से सुरक्षित होंगी और सरकार का कर्तव्य होगा कि उनकी रक्षा करे।

2. उनको अधिकार होगा कि वे जिस तरह चाहें, गिरजों में या गिरजों के बाहर अपने विश्वासों के अनुसार इबादत करें।

3. उनकी जायदादें और सम्पत्तियां किसी हाल में भी ज़ब्त न होंगी।

4. उनके गिरजों को, किसी मस्जिद या दूसरी इमारत में हरगिज़ तब्दील न किया जाएगा, न उनकी सलीबें उनसे छीनी जाएंगी।

6. यहूदी और ईसाई दूसरे लोगों की तरह जिज़िया (सुरक्षा कर) अदा करेंगे।

6. यूनानी नगर से निकाल दिए जाएँगे, मगर उनसे किसी प्रकार की छेड़खानी न की जाएगी। हां, जो ठहरना चाहें और वचन दें कि वे शान्ति के साथ जीवन बिताएंगे, उन्हें रहने का पूरा अधिकार होगा। वे ईसाई, जो यूनानियों के साथ जाना चाहें, अपनी पूरी सम्पत्ति के साथ जा सकते हैं।

7. जब तक अगली फ़सल पक कर तैयार न हो, किसी से जिज़िया न वसूल किया जाएगा।

इस समझौते पर ख़ालिद इब्न वलीद, अम्र इब्न आस, मुआविया इब्न अबू सूफ़ियान और अब्दुर्रहमान इब्न औफ़ ने गवाह के रूप में हस्ताक्षर किए। यह समझौता आज के "सभ्य" जगत् की आंखें खोल देने के लिए काफ़ी है।

इसके बाद हज़रत उमर (रज़ि०) बैतुलमक़्दिस की ओर चले।

उनकी राजनीतिक स्थिति तो यह थी कि वे संसार की दो महान् शक्तियों— ईरानी साम्राज्य और रूमी साम्राज्य को परास्त कर चुके थे, पर बैतुलमक्दिस की ओर जाते समय वे एक साधारण यात्री की तरह एक ऊंट पर सवार, अपने एक दास के साथ रास्ते की मंज़िलें तय कर रहे थे। दास व स्वामी— ख़लीफ़ा और गुलाम— में समता का हाल यह था कि दोनों बारी-बारी उस ऊंट पर बैठ रहे थे। इस प्रकार समय का ख़लीफ़ा कभी सवारी पर होता तो कभी पैदल, यहां तक कि नगर आ गया, उस समय दास के सवार होने की बारी थी और ख़लीफ़ा के नकेल पकड़ने की। हज़रत उमर (रज़ि०) से बहुत कहा गया कि आप कम से कम यहां तो ऊँट पर सवार हो जाइए, लेकिन उन्होंने दास को अपनी बारी निभाने की बात कही।

बैतुलमक्दिस में आप कई दिन तक ठहरे रहे और प्रशासनिक कार्यों में जुटे रहे। उन्हीं दिनों की घटना है कि हज़रत बिलाल (रज़ि०) ने अमीरुल मोमिनीन से शिकायत की कि अफ़सर तो अच्छे भोजन करते हैं और हमारे जैसे सिपाहियों को अति साधारण भोजन दिया जाता है। ख़लीफ़ा ने उसी समय आदेश दिया कि आगे हर सिपाही को वेतन और युद्ध में प्राप्त शत्रु के माल के अलावा अच्छा भोजन सरकार की ओर से जुटाया जाए।

हम्स में दूसरी बार

मुसलमानों की निरन्तर विजय से ईसाई परेशान हो चुके थे। बार-बार वे मुसलमानों से भिड़ते और हर बार उन्हें मुंहकी खानी पड़ती। हिरक्ल से जज़ीरा वालों ने सहायता मांगी कि इस बार नए सिरे से, पूरी शक्ति और साहस बटोर कर हम मुसलमानों की बढ़ती हुई शक्ति को रोकना चाहते हैं। अतः कैसर हिरक्ल ने एक भारी सेना हम्स को भेज दी। दूसरी ओर से जज़ीरा वाले तीस हज़ार की सेना लेकर बड़ी शान के साथ मुसलमानों से मुक़ाबले के लिए

निकले। सब सेनाएँ हम्स में इकट्ठी हुईं।

अबू उबैदा ने भी नगर से बाहर निकल कर अपनी सेनाओं को पंक्तिबद्ध किया। इन घटनाओं की सूचना अमीरुल मोमिनीन को दी गई। हज़रत उमर (रज़ि०) ने आठ विभिन्न स्थानों पर फ़ौजी छावनियाँ बना रखी थीं और हर छावनी में चार हज़ार घोड़े थे, जो इस उद्देश्य से रखे गए थे कि कभी ऐसा संयोग आए कि कुमुक की ज़रूरत पड़े तो तुरन्त इन्हें भेज दिया जाए। अबू उबैदा का पत्र मिलते ही ख़लीफ़ा ने कुछ छावनियों के अफ़सरों को हिदायतें भेज दीं कि वे कुमुक को लेकर तुरन्त पहुंचें। ख़लीफ़ा ने केवल इतना ही नहीं किया, बल्कि वे ख़ुद भी दमिश्क गए।

जब ये ख़बरें ज़ज़ीरा वालों को पहुंचीं तो वे बहुत परेशान हुए, हम्स में लड़ाई का इरादा बदल दिया और अपनी पूरी सेना लेकर जज़ीरा वापस चले गए। अरब के दूसरे कबीले, जो ईसाइयों की मदद के लिए आए थे, वे भी पछताए और हज़रत ख़ालिद से ख़ुफ़िया सम्पर्क पैदा करके कहलाया कि तुम कहो तो हम इसी वक़्त या ठीक लड़ाई के समय ईसाइयों से अलग हो जाएं। ख़ालिद ने उनकी बात की कोई अहमियत न दी और कहला भेजा कि चाहे तुम हमारे मुक़ाबले में रहो या सेना छोड़कर चले जाओ, हमारे लिए सब बराबर हैं और यह कि मैं प्रधान सेनापति नहीं हूं। प्रधान सेनापति तो हज़रत अबू उबैदा हैं और जो कुछ कहना है, उनसे कहो।

मुसलमानों की सेना का तकाज़ा बराबर बढ़ता जा रहा था कि हमला किया जाए, लेकिन अबू उबैदा का मन सन्तुष्ट न था। हज़रत ख़ालिद से मशविरा लिया गया तो उन्होंने खुले शब्दों में कह दिया कि ईसाई हमेशा अपनी संख्या के बल पर लड़ते रहे, और उनकी अब वह संख्या भी नहीं रही, उनकी शक्ति टूट चुकी है, इसलिए बिल्कुल उन पर धावा बोल दीजिए। आख़िर हज़रत अबू उबैदा

तैयार हो गए, वक्तव्य दिया, सेना का मनोबल ऊँचा किया और धावा बोल देने का आदेश दे दिया। मुसलमानों ने जोश में आकर इतना तेज़ हमला किया कि ईसाई सेना के पांव उखड़ गए और पीछे को भाग खड़े हुए।

जज़ीरा

जज़ीरा दज़ला और फ़रात के बीच में स्थित है। इसके पश्चिम की ओर आर्मीनिया और एशिया माइनर है, दक्षिण की ओर सीरिया है, पूरब की ओर इराक़ है और उत्तर की ओर भी आर्मीनिया के कुछ भाग स्थित हैं।

जब हम्स में ईसाइयों को बुरी तरह हारना पड़ा, तो वे बहुत घबराए और जज़ीरे पर भारी तैयारियां शुरू कर दीं। जज़ीरा की सीमा इराक़ से मिली हुई थी। आप को याद होगा कि इराक़ की विजय के बाद हज़रत साद इराक़ के प्रशासक बना दिए गए थे। जज़ीरा पर ईसाइयों के जमाव की सूचना उन्होंने तुरन्त हज़रत उमर (रज़ि०) को भेज दी। आपने इस मुहिम के लिए अधिकारियों को भेज दिया। अब्दुल्लाह इब्नुल मुकिम पाँच हजार की टुकड़ी लेकर बिजली की तरह तकरीत की तरफ़ बढ़े। तकरीत जज़ीरे का आरम्भिक नगर है। शहर के चारों तरफ़ घेरा डाल दिया गया।

अरब के कुछ क़बीले— अयाद, तग़लब और नम्र भी ईसाइयों की मदद कर रहे थे। जब अब्दुल्लाह को ये हालात मालूम हुए, तो उन्होंने इन क़बीलों को पैग़ाम भेजा कि कितने शर्म की बात है कि तुम अरब होकर अजमियों (ग़ैर-अरबों) की मदद कर रहे हो। इस पैग़ाम का इतना प्रभाव हुआ कि वे सब इस्लाम की गोद में आ गए और यह तय पाया कि जब मुसलमान बाहर से शहर पर हमला करें तो अन्दर से अरब क़बीले अजमियों पर हमला कर दें। इसका फल यह निकला कि अजमी बुरी तरह परास्त हुए।

एक महीने तक शहर का घेराव रहा और इस बीच चौबीस बार मुसलमानों ने इस शहर पर हमले किए, जब तकरीत पर विजय प्राप्त हो गई, तो ख़लीफ़ा ने साद के नाम हुक्मनामा जारी किया कि वह अयाज़ इब्न ग़नीम को पांच हज़ार सेना के साथ जज़ीरा पर हमले के लिए भेज दें और ख़ुद शहर 'रहा' की ओर बढ़े। साद ने रहा पर, जो किसी समय रूमी साम्राज्य की यादगार समझा जाता था, पड़ाव डाला, फिर छोटी-छोटी झड़पों के बाद जज़ीरा के तमाम शहर जीत लिए गए।

ख़ूज़िस्तान

सन् पन्द्रह हि० के शुरू में हज़रत मुग़ीरा इब्न शोबा बसरा के गवर्नर मुकर्रर हुए थे। उन्होंने परिस्थिति का अवलोकन कर ख़लीफ़ा को रिपोर्ट दी कि ख़ूजिस्तान की सीमा बसरा से मिली हुई है, यहां के लोग बड़े ही उपद्रवी हैं, इसलिए ख़ूज़िस्तान पर विजय प्राप्त किए बिना बसरा में पूर्ण शान्ति का स्थापित होना असम्भव है, अतः बहुत सोच-विचार के बाद सन् 17 हि० में अहवाज़ पर जिसको हुर्मुज़ शहर भी कहा जाता था, हमला किया गया, मगर शहर के हाकिम ने एक सालाना रकम देनी मंज़ूर करके मुसलमानों से समझौता कर लिया। सन् 17 हि० में मुग़ीरा को अलग कर दिया गया और अबू मूसा अशअरी उनकी जगह मुकर्रर हुए। मुग़ीरा के चले जाने के बाद अहवाज़ के हाकिम ने विद्रोह कर दिया और उसे सालाना रक़म, जिसका उसने वचन दिया था, देना बन्द कर दिया। अबू मूसा अशअरी के लिए, सिवा उससे लड़ने के और कोई रास्ता न था, अतः उन्होंने अहवाज़ को घेर लिया और कड़ी लड़ाई के बाद शहर पर विजय प्राप्त कर ली। हज़ारों आदमी और औरतें गिरफ़्तार कर लिए गए। जब ख़लीफ़ा को इसका पता चला तो आपने फ़र्मान भेजा कि सब मर्द और औरतें, जो गिरफ़्तार किए गए

थे, छोड़ दिए जाएँ। आज्ञापालन से किसको इन्कार हो सकता था। अतएव सब के सब आज़ाद कर दिए गए। इसके बाद मुस्लिम सेनाओं ने मुनाज़िर, सूस और रामर्ज़ पर भी विजय प्राप्त कर ली।

उन दिनों बादशाह यज़्दगुर्द अपने शाही ख़ानदान के साथ कुम में ठहरा हुआ था। एक प्रसिद्ध-जनरल हर्मुज़ान एक प्रतिनिधि-मण्डल लेकर यज़्दगुर्द के पास हाज़िर हुआ और मुसलमानों की बढ़ती शक्ति का उल्लेख करके कहा कि अगर मुझे उनके दमन के लिए नियुक्त किया जाए, तो निश्चय ही मुसलमानों की बढ़ती हुई बाढ़ को रोक दूंगा। यज़्दगुर्द ने एक बहुत बड़ी सेना उसके साथ कर दी। हरमुज़ान ने शोस्तर पहुंचकर, जो ख़ोजिस्तान का हेड क्वार्टर था, बहुत बड़े स्तर पर लड़ाई की तैयारियां शुरू कीं। क़िले की फिर से मरम्मत कराई, ख़न्दक खुदवाई और हर तरफ़ हरकारे दौड़ाए, ताकि वे लोगों को देश के लिए मरने-कटने पर उभार सकें।

अबू मूसा अशअरी इन घटनाओं से ग़ाफ़िल न थे। उन्होंने 'दरबारे ख़िलाफ़त' में ये सब बातें विस्तार से लिखीं और सहायता चाही। अमीरुल मोमिनीन ने कूफ़ा के गवर्नर के नाम फ़रमान भेजा कि कूफ़ा में अब्दुल्लाह इब्न मसऊद को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करके ज़्यादा से ज़्यादा फ़ौज लेकर अबू मूसा की मदद के लिए पहुंचो।

हरमुज़ान को अपनी सेना पर बड़ा गर्व था। इसलिए अपनी शक्ति के बल पर उसने शहर से निकल कर मुसलमानों पर हमला किया। अबू मूसा उच्च श्रेणी के सेनापति थे। उन्होंने बड़ी बुद्धिमानी से सेना को गठित किया। खूब ज़ोर का मुक़ाबला हुआ। अन्त में मुसलमानों को ही विजय प्राप्त हुई। हर्मुज़ान घबड़ा गया, उसका गर्व चूर-चूर हो गया, यहां तक कि उसने क़िलाबन्द होकर लड़ने में ही अपनी कुशलता जानी।

एक दिन अजमियों (ईरानियों) का एक आदमी अबू मूसा की ख़िदमत में हाज़िर हुआ और कहा कि अगर उसके पूरे परिवार को शरण दी जाए, तो वह मुसलमानों का कब्ज़ा शहर पर करा देगा। बात मान ली गई और वह अशरस नामक एक मुसलमान अफ़सर को एक सुरंग के ज़रिए अपने साथ शहर में ले गया, फिर वहां से वह उसे क़िले में लेकर पहुंचा। अजमी ने मुसलमान अफ़सर को तमाम रास्ते दिखा दिएं और ऊँच-नीच भी समझा दी। अबू मूसा ने पूरा इत्मीनान कर लेने के बाद दो सौ योद्धाओं को अशरस के साथ भेज दिया, ताकि वे उसी तहख़ाने के रास्ते शहर में दाख़िल होकर क़िला के दरवाज़े खोल दें। अतः उन योद्धाओं ने, जिन्होंने सत्य-धर्म को विजयी बनाने के लिए जान हथेली पर रखी हुई थी, शहर में दाख़िल होकर पहरेदारों को मौत के घाट उतार दिया और क़िले के दरवाज़े खोल दिए। फिर क्या था मुस्लिम सेना विजय पताका लिए अन्दर दाख़िल हो गई। यह देखकर हरमुज़ान बुर्ज पर चढ़ गया और कहा कि अब मेरे पास 100 बाण हैं, किसी की हिम्मत नहीं कि मुझे ज़िन्दा हाथ लगाए, मैं अपने आप को तुम्हारे हवाले करने को तैयार हूं, बशर्ते कि मुझे ज़िन्दा अमीरुल मोमिनीन के पास मदीना पहुंचा दिया जाए। वही मेरे बारे में जो फ़ैसला करेंगे, मुझे मंज़ूर होगा।

हज़रत अबू मूसा ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और हज़रत अनस (रज़ि०) को इस कार्य पर नियुक्त कर दिया कि वे हरमुज़ान को 'दरबारे ख़िलाफ़त' में ले जाएं। हरमुज़ान अपने दोस्तों और रिश्तेदारों के साथ मदीने की ओर चला, पूरी शान व शौकत के साथ और मूल्यवान वस्त्रों से सुसज्जित। हरमुज़ान समझता था कि जिस व्यक्ति ने तमाम दुनिया में हलचल मचा रखी है, वह निश्चय ही बहुत महान् होगा, बड़ी शान-शौकत से रहता होगा। ख़लीफ़ा-ए-वक़्त से मिलने हरमुज़ान मस्जिदे नबवी में पहुंचा। अमीरुल मोमिनीन के बारे में मालूम किया। जब उसे एक लम्बे क़द

और छरहरे व्यक्ति की ओर, जो फटे-पुराने कपड़े पहने ज़मीन पर सोया हुआ था, इशारा करके बताया गया कि वही अमीरुल मोमिनीन हैं, तो हरमुज़ान स्तब्ध रह गया। इसी बीच अमीरुल मोमिनीन की आंख खुल गई। दुभाषिए के ज़रिए बात-चीत हुई। अपको बड़ा दुख था कि उस व्यक्ति ने दो मुसलमान जनरलों को मार डाला है। अभी वह सोच ही रहे थे कि उसके बारे में क्या हुक्म दें कि हरमुज़ान ने कहा कि जब तक वह पानी न पी ले, उसके क़त्ल का हुक्म न दिया जाए। हज़रत उमर (रज़ि०) सहमत हो गए। जब पानी का प्याला हरमुज़ान के सामने आया, तो उसने प्याला लेकर ज़मीन पर रख दिया और कहा कि मैं पानी कदापि न पीयूंगा और वचन के अनुसार जब तक मैं पानी न पी लूं, आप मुझे क़त्ल नहीं कर सकते। हज़रत उमर (रज़ि०) उसकी इस चाल पर मुस्कराए। हरमुज़ान ने कहा, 'मैं पहले ही से मुसलमानों के भाई-चारे से प्रभावित होकर इस्लाम कुबूल कर चुका हूं और अब फिर दोबारा कलिमा पढ़ता हूं। मैंने यह बहाना इसलिए किया कि लोग यह न सोचें कि तलवार की डर से मैंने इस्लाम स्वीकार कर लिया है। हज़रत उमर (रज़ि०) ने दो हज़ार अशरफ़ी सालाना उसका वज़ीफ़ा तय किया और वह अमीरुल मोमिनीन के क़रीबी लोगों में से हो गया।

शोसतर की विजय के बाद मुसलमानों ने जुन्दी साबूर का घेराव कर लिया और विजय मुसलमानों के हाथ लगी। इस शहर पर विजय प्राप्त कर लेने के बाद ख़ूज़िस्तान के पूरे क्षेत्र पर मुसलमानों को विजय प्राप्त हो गई।

कुछ महत्वपूर्ण घटनाएँ

जिन दिनों रूमी और ईरानी साम्राज्य के बड़े-बड़े गढ़ मुलसमानों के क़ब्ज़े में आते जा रहे थे और हज़रत ख़ालिद और अबू उबैदा जैसे सेनापतियों और जनरलों के चामत्कारिक कारनामों की धूम मची हुई थी, उसी समय हज़रत ख़ालिद का सेनापति-पद से हटाया जाना और अमवास की वबा का फैलना इस्लामी इतिहास की महत्वपूर्ण घटनाओं में से है।

कहा जाता है कि हज़रत उमर, हज़रत ख़ालिद से, प्रशासनिक दृष्टि से सन्तुष्ट नहीं थे, इसलिए कि हज़रत ख़ालिद केन्द्र को हिसाब-किताब भेजने में बड़ी सुस्ती दिखाते थे। उन्हें बार-बार सचेत किया गया कि वे अपने कर्त्तव्यों के निभाने में कोताही न किया करें, मगर उन्होंने यह कह कर टाल दिया कि मैं हज़रत अबूबक्र सिद्दीक़ के समय में भी ऐसा ही करता रहा हूं, इसलिए मजबूर हूं। हज़रत उमर (रज़ि०) जैसे सच्चरित्र और अनुशासन प्रिय व्यक्ति इस उत्तर से कैसे सन्तुष्ट हो सकते थे? आपने स्पष्ट कह दिया कि वे सिर्फ़ इस शर्त पर सेनापति रह सकते हैं कि हिसाब नियमित रूप से केन्द्र को निर्धारित समय पर भेज दिया करें। मगर जब यह ख़ालिद को मंजूर न हुआ तो उन्हें सेनापति-पद से हटाकर सेकेण्ड इन कमांड मुक़र्रर कर दिया गया और हज़रत अबू उबैदा को सेनापति बना दिया गया।

इसी तरह उन्होंने एक व्यक्ति को, जिसने उनकी शान में क़सीदा पढ़ा था, दस हज़ार अशरफ़ी की भारी राशि परस्कार के

तौर पर दी थी। जब हज़रत उमर (रज़ि०) को इस बात की सूचना मिली, तो वे बहुत नाराज़ हुए और कहा कि अगर यह रक़म बैतुलमाल से दी गई है, तो ख़ियानत है और अगर अपनी गिरह से दी गई है तो फ़िज़ूलख़र्ची है।

हज़रत उमर (रज़ि०) ने हज़रत अबू उबैदा के पास फ़रमान जारी किया कि वे आम मुसलमानों के सामने ख़ालिद की जवाब-तलबी करें। अगर वह ग़लती को मान लें, तो उन्हें माफ़ कर दिया जाए।

अबू उबैदा फ़रमान पढ़ कर अवाक् रह गए। वे जानते थे कि ख़ालिद किस श्रेणी के जनरल हैं,लेकिन फिर भी ख़लीफ़ा का फ़रमान था, इसलिए उसकी अवज्ञा भी नहीं की जा सकती थी। विवश हो उन्होंने हज़रत ख़ालिद को बुलवाया और भरी सभा में फ़रमान सुनाया। हज़रत ख़ालिद ख़ामोश रहे,दूसरी बार फिर फ़रमान पढ़ा गया, वह फिर ख़ामोश रहे। हज़रत बिलाल आगे बढ़े, उन्होंने जनरल के सिर से अमामा (पगड़ी) उतार कर उसी अमामा से उनके हाथ कमर के पीछे ले जाकर बांध दिया। कैसी थी वह घड़ी! वह योद्धा, जिसका नाम सुनकर संसार के बड़े-बड़े योद्धा काँप उठते थे, एक अपराधी की हैसियत से मस्जिद में खड़ा है। तीसरी बार फिर पूछा गया कि ये रुपये तुमने कहां से लिए? जवाब में हज़रत ख़ालिद ने कहा कि यह मेरा अपना रुपया था। हज़रत बिलाल ने तुरन्त उनके हाथ खोल दिए और ख़लीफ़ा के दरबार में पहुंचने का हुक्म सुना दिया गया।

ख़लीफ़ा के दरबार में पहुंचते ही अपील की गई मेरे साथ अन्याय किया गया है।

हज़रत उमर ने पूछा, 'तुमने इतनी दौलत कहां से ली है?'

ख़ालिद ने जवाब दिया, 'अपने हिस्से के युद्ध में प्राप्त माल

से।'

'मेरे हिसाब के मुताबिक़ मेरे हिस्से में साठ हज़ार अशर्फ़ी होनी चाहिए।'

अतः उनका हिसाब चेक किया गया तो अस्सी हज़ार निकला। बीस हज़ार की रक़म बैतुलमाल में दाख़िल की गई। फिर हज़रत ख़ालिद को सम्बोधित करके ख़लीफ़ा हज़रत उमर (रज़ि०) ने कहा, 'ख़ुदा की क़सम! ख़ालिद तुम मुझे प्रिय हो, मैं दिल से तुम्हारा आदर करता हूं।'

इसके बाद अमीरुल मोमिनीन ने तमाम राज्यपालों को लिखवाया कि हज़रत ख़ालिद को बद-दयानती या नाराज़गी की वजह से पद-च्युत नहीं किया गया, बल्कि मैं देखता हूं कि जनता उन पर लट्टू हो रही है। वह समझने लगी है कि तमाम लड़ाइयां ख़ालिद की वजह से जीती जा रही हैं और असली विजय देने वाले अर्थात् ख़ुदा को लोग भूल रहे हैं।

कैसी विचित्र है यह घटना कि इतने बड़े योद्धा से साधारण मनुष्य जैसा बर्ताव किया गया। इस घटना से हज़रत ख़ालिद की शालीनता और हज़रत उमर (रज़ि०) की सावधानी और सतर्कता का पता चलता है। इस घटना के कुछ वर्ष बाद ही एक रेगिस्तानी क्षेत्र में, जहां वह मदीना से प्लेग से डर कर भाग आए थे; बड़ी बेबसी की हालत में अपने असली मालिक की तरफ़ रुजू कर गए। मौत के समय वे अपने बाज़ुओं और जिस्म के घावों को, जो उन्होंने विभिन्न लड़ाइयों में पाए थे, दिखाते हुए दहाड़ें मार-मार कर रोते थे और कहते थे कि मैं मौत से डरकर यहां आया, मगर मौत ने मेरा पीछा न छोड़ा, मैं कभी मौत से नहीं डरा था, मगर आज मौत के विचार ने मुझे बहुत निढाल कर दिया है।

अमवास की वबा

सन् 18 हि० में सीरिया, मिस्र और इराक़ में इस ज़ोर का प्लेग फैला कि उसने इन क्षेत्रों में भारी तबाही मचा दी। सन् 17 हि० के आख़िर में वबा फैली और कई महीने तक जारी रही। अमीरुल मोमिनीन ख़ुद सरग़ नामक स्थान पर पहुंचे और सेना को कूच का हुक्म दे दिया। हज़रत अबू उबैदा भाग्य पर बहुत ज़्यादा विश्वास रखते थे, उन्होंने इसका विरोध किया। लोगों के आग्रह पर अमीरुलमोमिनीन मदीना लौट गए। वहां पहुंच कर आपने अबू उबैदा को 'दरबारे ख़िलाफ़त' में तलब किया। अबू उबैदा समझ गए कि फिर कूच का हुक्म देने के लिए बुलाया जा रहा है, इसलिए उन्होंने मदीना जाने की अधिक चिन्ता न की।

हज़रत उमर (रज़ि०) बहुत परेशान और चिन्तामग्न रहा करते थे, आख़िर अबू उबैदा को साफ़-साफ़ लिख भेजा कि जहां सेना ने डेरे डाल रखे हैं, वह जगह नशेब में है और नम है, तुम लोगों की जानें ख़ामख़ाही बरबाद कर रहे हो।अबू उबैदा ने फ़रमान के मुताबिक़ कूच किया और जाबिया में जाकर डेरे डाल दिए। यह जगह जलवायु की दृष्टि से बहुत अच्छी समझी जाती थी, मगर जाबिया पहुंच कर अबू उबैदा बीमार हो गए। काफ़ी इलाज किया, लेकिन कोई फ़ायदा न हुआ। जब उन्हें जान बचने की आशा न रही तो जोरदार शब्दों में सेना को नसीहत की और स्वयं अपने रब से जा मिले।

उनके बाद हज़रत मुआज़ सेनापति नियुक्त किए गए। कुछ दिनों के बाद मुआज़ के बेटे बीमार हुए और आनन-फानन देहान्त हो गया। उन्हें दफ़न करके वापस आए, तो ख़ुद बीमार पड़ गए और तत्काल मृत्यु के शिकार हो गए। हज़रत मुआज़ के बाद हज़रत अम्र इब्न आस सेनापति नियुक्त किए गए।

बीमारी इतने ज़ोरों पर थी कि कुछ ही दिनों में पच्चीस हज़ार मुसलमान मौत के घाट चढ़ गए। हज़रत अम्र इब्न आस ने तमाम लोगों को एकत्र करके एक वक्तव्य दिया कि जब महामारी शुरू होती है, तो आग की तरह फैलती है, इसलिए तमाम सेना को यहाँ से उठकर पहाड़ों पर चला जाना चाहिए। कुछ लोगों ने उनसे मतभेद किया और कहा कि यह भाग्य के विरुद्ध है, मगर अधिकांश व्यक्तियों ने सेनापति की बात मान ली और महामारी का ख़तरा दूर हो गया। अबू उबैदा, हारिस इब्न हिशाम, यज़ीद इब्न अबी सुफ़ियान, मुआज़ इब्न जबल, सुहैल इब्न उमर और उत्बा इब्न सुहैल के अलावा कई बुज़ुर्ग हस्तियां इस महामारी का शिकार हुईं। अमीरुलमोमिनीन को तमाम घटनाओं से सूचित किया जाता रहा। जब यज़ीद इब्न अबी सुफ़ियान और मुआज़ इब्न जबल की वफ़ात की ख़बर ख़लीफ़ा को मिली तो अमीरुल मोमिनीन को भी परेशानी हुई, आख़िर मुआविया को दमिश्क और शुरहबील को जार्डन का गवर्नर मुकर्रर फ़रमाना। इस महामारी की वजह से इस्लाम की विजयों का ज़ोर कम हो गया। लोगों की हालत ना-क़ाबिले बयान थी। जब अमीरुल मोमिनीन को तबाहकारियों की तफ़्सील मालूम हुई तो वे तड़प उठे और हज़रत अली को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करके स्वयं सीरिया को चल पड़े। दो दिन ऐला में रुकने के बाद दमिश्क पहुंचे, सेना को वेतन दिए। जो लोग मर चुके थे, उनके जायज़ वारिसों को बुलाकर उनकी मीरास उन्हें दिला दी। कई एक नई छावनियां कायम कीं, ख़ाली जगहों पर नए पदाधिकारी नियुक्त किए, तात्पर्य यह कि पूरा इन्तिज़ाम करके वापस लौट आए।

क़ीसारिया की विजय

क़ीसारिया पुराने समय का बड़ा प्रसिद्ध नगर था। यह नगर सीरिया के तट पर स्थित था और फ़िलस्तीन का बहुत महत्वपूर्ण

ज़िला समझा जाता था। कहा जाता है कि इसके तीन सौ से अधिक बड़े और बा-रौनक बाजार थे। इस शहर पर सन् 13 हि० में अम्र इब्न आस के सेनापतित्व में मुसलमानों ने चढ़ाई की, मगर उस पर विजय न पा सके। हज़रत उमर (रज़ि०) ने यज़ीद इब्न अबी सुफ़ियान को अबू उबैदा की जगह सेनापति नियुक्त करके क़ैसारिया पर धावा बोल देने का हुक्म दिया। मगर जब सन् 13 हि० में उनकी भी मृत्यु हो गई तो उनके भाई अमीर मुआविया को यह सेवा सुपुर्द की गई। अमीर मुआविया ने बहुत बड़ी सेना लेकर क़ैसारिया पर हमला कर दिया, अर्से तक घेराव पड़ा रहा। इस बीच कई बार शहर वालों ने निकल कर मुसलमानों का मुक़ाबला किया, न तो शहर ही जीता जा सका, न शहर वाले ही मुसलमानों को पसपा कर सके। आख़िर यूसुफ़ नामक एक यहूदी ने मुसलमानों को एक सुरंग का पता दिया, जो शहर के नीचे से गुजरती हुई किले के दरवाज़े तक पहुंचती थी। मुसलमान उस रास्ते से किले तक पहुंचे और किले के दरवाज़े खोल दिए। इस ज़ोर की लड़ाई हुई कि अस्सी हज़ार ईसाई काम आए और मुसलमानों ने शहर पर विजय प्राप्त कर ली, चूंकि यह सीरिया का बड़ा अहम शहर था, इसलिए लगभग पूरे सीरिया पर मुसलमानों की विजय घोषित कर दी गई।

अजमी इराक़

इराक़ भू-भाग दो भागों में विभाजित था। पश्चिमी भाग को अरबी इराक़ और पूर्वी भाग को अजमी इराक़ कहते हैं।

ईरानियों का ख़याल था कि अरब लूटमार और क़त्ल व ग़ारत के लिए उठे हुए हैं और सीमावर्ती भागों को लूटकर उनकी यह कामना पूरी हो जाएगी। फिर वे अपने घरों को लौट जाएंगे, लेकिन जब ख़ूज़िस्तान पर विजय मिल गई, तो उन्हें असली ख़तरे का एहसास हुआ। अतः ईरानी सम्राट ने हर ओर हरकारे और दूत दौड़ा दिए, ताकि इस ख़तरे की सूचना बस्ती-बस्ती, घर-घर पहुंच जाए। फिर क्या था, समूचे देश में एक हलचल मच गई। देश की परम्पराओं को बाक़ी रखने के लिए लगभग डेढ़ लाख आदमी ईरानी झंडे तले क़ुम में आ जमा हुए।

अमीरुलमोमिनीन को तमाम घटनाओं की सूचना मिलती रही। कूफ़ा के गवर्नर हज़रत अम्मार इब्न यासिर (रज़ि०) ने ईरानियों की ज़बरदस्त तैयारियों के हालात सविस्तार लिखकर भेजे थे। हज़रत उमर (रज़ि०) वह पत्र लिए हुए मस्जिदे नबवी में दाख़िल हुए और उन्होंने अपने वरिष्ठ साथियों से मशविरा चाहा।

अपना मत व्यक्त करते हुए तलहा इब्न उबैदुल्लाह ने कहा कि अमीरुलमोमिनीन! इस नाज़ुक घड़ी को आप हम सबसे बेहतर समझते हैं, इसलिए अपने अनुभव के आधार पर यथोचित आदेश दें। हज़रत उस्मान ने राय दी कि सीरिया, यमन और बसरा के

गवर्नरों को हिदायत की जाए कि वे अपनी सेनाओं के साथ लड़ाई के मोर्चे पर पहुंच जाएं और खलीफ़ा खुद कूफ़ा जाकर उचित प्रबन्ध करें। अधिकांश को यह राय पसन्द आई, मगर हज़रत अली (रज़ि०) ने उसका विरोध करते हुए फ़र्माया कि मुझे मशविरा सही नहीं जंच रहा है। जब मुसलमानों की सेनाएँ सीरिया, यमन और बसरा से चल देंगी तो सीमा के लोग विद्रोह कर देंगे। अमीरुल मोमिनीन का मदीना से चला जाना भी सही न होगा, मेरी राय है कि अमीरुल मोमिनीन मदीना में ठहरे रहें और यमन, बसरा और सीरिया से सिर्फ़ एक-एक तिहाई सेना को समर-क्षेत्र में उतारा जाए।

हज़रत उमर ने हज़रत अली की राय से सहमति व्यक्त की। अब सेनापति की नियुक्ति का प्रश्न था। आमतौर से यही कहा जा रहा था कि इसका बेहतर फ़ैसला अमीरुलमोमिनीन ही कर सकते हैं, इसलिए यह काम उन्हीं के सुपुर्द किया गया। बहुत कुछ सोचने-समझने के बाद हज़रत उमर (रज़ि०) ने नोमान इब्न मुक़र्रिन का नाम पेश किया, सब इस नाम पर सहमत थे, अतः उन्हीं को इस पद पर नियुक्त कर दिया गया।

नोमान इब्न मुक़र्रिन तीस हज़ार सिपाहियों को लेकर कूफ़ा से युद्ध-क्षेत्र की ओर चले। बड़े-बड़े योद्धा सहाबी साथ थे। हज़रत उमर (रज़ि०) ने इस्लामी सेनाओं के नाम, जो पहले से फ़ारस में मौजूद थीं,फ़रमान भेजा कि वे ईरानियों को नहावन्द की ओर बढ़ने न दें, अतएव जासूसों ने रिपोर्ट दी कि नहावन्द तक रास्ता बिल्कुल साफ़ है, इसलिए नोमान बिना किसी बाधा या कष्ट के बढ़ते चले गए और नहावन्द से 9 मील के फ़ासले पर जा डेरे जमाए।

ईरानियों ने भी मुसलमानों से निबटने के अनेक उपाय शुरू कर दिए। एक दूत अरबों के पास भेजा, ताकि समझौता करने के

लिए अरबों के किसी विश्वसनीय व्यक्ति को साथ लाए। हज़रत नोमान ने इस काम के लिए मुग़ीरा इब्न शोबा को नियुक्त किया। ईरानियों ने अपनी आदत के मुताबिक़ अरबों पर रोब डालने के लिए बड़े ठाठ से दरबार सजाया। मर्दान शाह ताज पहन कर तख़्त पर बैठा, आस-पास राजकुमार और वरिष्ठ अधिकारियों की पंक्तियां सजीं। नंगी तलवारें आंखों को चकाचौंध किए दे रही थीं। लेकिन इन बातों का प्रभाव अरब मुसलमानों पर कहां पड़ने वाला! जम कर बातें कीं। पहले मर्दान शाह ने ख़ुशामद की, लेकिन ख़ुशामद से काम न चला तो रोब डालने की कोशिश की, लेकिन यह चाल भी बेकार हो गई, यहां तक कि मुस्लिम दूत नाकाम होकर वापस चला आया और दोनों तरफ़ से लड़ाई की तैयारियां शुरू हो गईं।

अजमियों ने तमाम मैदान में गोखुरू बिछा दिए, ताकि मुसलमानों को आगे बढ़ने में कठिनाई हो। वे खुद क़िला बन्द थे और जब चाहते, अचानक मुसलमानों पर हमला करके उन्हें नुक़सान पहुंचा देते।

नोमान ने इस संबंध में अपने परामर्शदाताओं को इकट्ठा किया, परामर्श लिया और बात यह तय पाई कि कुछ टुकड़ियां तो वहीं ठहरी रहें, जहां पहले पड़ाव डाला था और शेष सेना सात-आठ मील की दूरी पर चली जाएं, इस तरह ईरानी सेनाएं थोड़े लोगों को देखकर हमला करेंगी, फिर उन्हें निशाने पर लेकर ज़ोर का हमला बोल दिया जाएगा, इस तरह पूरी ईरानी सेना पसपा होकर रह जाएगी।

जैसा सोचा गया, वैसा ही हुआ। ईरानी सेनाएँ मुसलमानों पर टूट पड़ीं। मुसलमान पीछे हटते चले गए। यहां तक कि वह घड़ी आ गई और योजना के अनुसार मुसलमान सेना ईरानियों पर टूट पड़ी। घमासान लड़ाई हुई, ख़ून की नदियाँ बह-गईं, मैदान में ख़ून

इतना बढ़ा कि घोड़ों को संभालना कठिन हो गया। अलावा दूसरे घोड़ों के, नोमान का घोड़ा भी फिसल कर ऐसा गिरा कि वे भी गिर पड़े और काफ़ी घायल हो गए। ज्यों ही वह गिरे, उनके भाई ने झंडा थाम लिया। नोमान का हुक्म था कि अगर मैं गिर जाऊँ, तो कोई व्यक्ति लड़ाई को छोड़कर मेरी ओर अपना ध्यान न लगाए। एक सिपाही ने उन को देखा और सहायता के लिए उनके पास बैठना चाहा, मगर सेनापति के हुक्म की याद आते ही,तुरन्त वहाँ से चल दिया। मुसलमानों के हमले की बढ़ी हुई ताक़त ने ईरानियों के क़दम डगमगा दिए। हज़रत नोमान ने आँखें खोलीं, पूछा, लड़ाई का अंजाम क्या रहा? कोई बोला, मुसलमान विजयी हो गए। तुरन्त अल्लाह का शुक्र अदा किया और कहा, जल्द से जल्द अमीरुल मोमिनीन को ख़बर पहुंचाओ। यह कह कर उनके प्राण पखेरू उड़ गए।

रात तक लड़ाई का सिलसिला जारी रहा। मुसलमानों का उत्साह और मनोबल अपने उत्कर्ष को पहुंचा हुआ था। ईरानियों के पाँव उखड़ चुके थे, आख़िर वे भाग निकले। मुसलमानों ने उनका पीछा किया और नहादन्द तक उनको धकेलते हुए ले गए। यहाँ के अग्निपूजक पुजारी ने निवेदन किया, अगर उसकी जान बख़्शी की जाए, तो वह एक अमूल्य निधि का पता देगा। उसने सम्राट किसरा परवेज़ के मूल्यवान हीरे-जवाहरात के ख़ज़ाने का पता दे दिया। हज़रत हुज़ैफ़ा ने, जो हज़रत नोमान के बाद सेनापतित्व का पद संभाले हुए थे, युद्ध में प्राप्त तमाम माल को सैनिकों में बाँट दिया और हीरे-जवाहरात के साथ माल का पांचवां हिस्सा अमीरुलमोमिनीन की ख़िदमत में भेज दिया।

हज़रत उमर (रज़ि०) को कुछ समय से युद्ध-स्थिति की सूचना नहीं मिली थी, इस कारण बहुत ज़्यादा चिन्तित थे कि इसी बीच दूत आ पहुंचा। आप सफलता की सूचना से अति प्रसन्न थे,

लेकिन जब नोमान की मृत्यु का हाल सुना, तो बहुत देर तक रोते रहे। जब दूत ने कहा, और भी बहुत से महाबली और असंख्य मुसलमान शहीद हुए हैं, जिनको हुज़ूर नहीं जानते, तो आप बहुत ही रोए और कहा, उमर जाने या न जाने, मगर खुदा उनको जानता है। जब हीरे-जवाहरात सामने लाए गए तो अमीरुलमोमिनीन ने वापस कर दिए और कहा कि ये वापस ले जाओ और उन्हें बेचकर सेना में बांट दो। ये जवाहरात चार करोड़ दिरहम में बिके और रकम सैनिकों में बांट दी गई।

मुसलमानों की इस विजय से ईरानियों का ज़ोर टूट गया और उनकी शक्ति क्षीणप्राय होकर रह गई।

सैनिक-चढ़ाई

मुसलमानों को आज तक जितनी लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं, वे केवल देश की रक्षा के लिए थीं, हाँ अरबी इराक़ ऐसा देश था, जिसे मुसलमानों ने अपने राज्य में शामिल कर लिया। इसका कारण यह था कि इस क्षेत्र में जो लोग आबाद थे, वे अरबी नस्ल के थे, उनकी भाषा अरबी थी। अलबत्ता, इधर जो लड़ाइयां हुईं, उनके कारण स्वयं पैदा हो गए थे। मुसलमान लड़ने पर मजबूर थे, वरन् हज़रत उमर (रज़ि०) कहा करते थे कि काश! हमारे और फ़ारस के बीच आग के पहाड़ हो जाते, ताकि हम फ़ारस पर और फ़ारस वाले हम पर हमलावर न हो सकते।

हम पहले ही लिख चुके हैं कि ईरानियों के मन में अरबों के खिलाफ़ अति विद्वेष-भाव पाया जाता था। बार-बार हारने की वजह से वे चोट खाए नाग की तरह तिलमिलाया करते थे और रात-दिन सोचा करते थे कि किस तरह अरबों को परास्त कर अपने माथे का कलंक मिटाएं। वे क्षेत्र, जिन पर मुलमानों का कब्ज़ा हो चुका था, ईरानियों के दिल में कांटा बन कर खटकते थे और उनकी

पूरी कोशिश रहती थी कि वहां एक ऐसी महाक्रान्ति आ जाए कि मुसलमानों के क़दम उखड़ जाएं, मानो ये ईरानी ऐसे ख़तरनाक षड्यन्त्र रच रहे थे कि अगर इन पर तत्काल ध्यान न दिया जाता, तो इस्लामी राज्य के लिए बराबर ख़तरा बना रहता।

इधर मुसलमानों का यह हाल था कि जिन क्षेत्रों पर उनका अधिकार हुआ था, उनकी कोशिश रहती कि वहां के निवासियों को हर प्रकार की सुख-सुविधा पहुंचाएं, मगर इन षड्यन्त्रकारियों के कारण नतीजा हमेशा उलटा निकलता। यह एक ऐसी स्थिति थी कि इस पर ध्यानपूर्वक विचार होना चाहिए था। ख़लीफ़ा ने अपनी मन्त्रणा-परिषद बुला ली, कारणों पर विचार किया जाने लगा। ख़ूब सोच-विचार के बाद निष्कर्ष यह निकला कि जब तक यज़्दगुर्द का पूरी तरह देश से निर्वासन न हो जाए, साजिशों का सिलसिला ख़त्म नहीं हो सकता। चूंकि तख़्ते कियान का वारिस मौजूद है, इसलिए ईरानियों का विचार है कि उनके हाथ-पांव मारने से ईरानी साम्राज्य की पुनर्स्थापना हो जाएगी।

इन कारणों से हज़रत उमर (रज़ि०) ने सामान्य सैनिक चढ़ाई का निश्चय कर लिया। कई जहाज़ अपने हाथ से तैयार किए। हर क्षेत्र के लिए सेना और सेनाधिकारी तैनात किए। ख़ुरासां का चार्ज अहनफ़ इब्न क़ैस को, साबूह और उर्दशेर, मुजाशिअ इब्न मसऊद को, असतख़र उस्मान इब्न आस को, फ़सा सीरिया को, किरमान सुहैल इब्न अदी को, असफ़हान अब्दुल्लाह को, सीस्तान आसिम इब्न उमर को, मकरान हक्म इब्न उमैर को सुपुर्द कर दिया।

अब्दुल्लाह इब्न अब्दुल्लाह ने सन् 21 हि० में बड़ी तैयारी के साथ असफ़हान पर चढ़ाई कर दी। ईरानियों ने पूरे जमाव के साथ उनका भी मुक़ाबला किया। ईरानी सेना का सेनापति इस्तज़ार था, जो बड़ा ही निडर, वीर योद्धा था। पहले प्रथम पंक्ति का कमांडर

जार्वादिया आगे बढ़ा और कहा कि मुसलमानों में से जिस को साहस हो, मेरे मुकाबले में आकर अपना भाग्य-निर्णय करे। हज़रत अब्दुल्लाह स्वयं आगे बढ़े और जार्वादिया उनके हाथ से मारा गया। इसके बाद असफ़हान के सरदार ने मुस्लिम सेना को सन्देश भिजवाया कि सेनाओं का लड़ाना ख़ामख़ाही लोगों का क़त्ल कराना है, इसलिए बेहतर होगा कि केवल हम और तुम लड़कर फ़ैसला कर लें। अब्दुल्लाह ने इस शर्त को मंज़ूर कर लिया। रईस का नाम फ़ाज़ूतफ़ान था। दोनों योद्धा भिड़ गए। सरदार ने बड़ी शान से अब्दुल्लाह पर हमला किया। हज़रत अब्दुल्लाह ने बड़ी फुर्ती और बहादुरी से हमले को रोका। सरदार ने अपना भविष्य देख लिया, समझ गया कि अब हारने के अलावा कोई रास्ता नहीं, तुरन्त बोला कि मैं समझौता चाहता हूं और शर्त यह है कि शहर वालों में से जो चाहे जिज़िया देकर मुस्लिम-राज्य में शान्तिपूर्ण जीवन बिताए और जो जिज़िया देना स्वीकार न करे, वह शहर से चला जाए। हज़रत अब्दुल्लाह ने इसे भी मंज़ूर कर लिया और समझौता हो गया।

उसी ज़माने में पता चला कि हमदान में विद्रोह हो गया है। ख़लीफ़ा हज़रत उमर (रज़ि०) ने नोमान इब्न मुक़रिन को बारह हज़ार की सेना के साथ इस द्रोह दमन पर नियुक्त किया। वहाँ मुसलमानों को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। घेरा डाले पड़े हुए थे, मगर शहर था कि उस पर विजय किसी प्रकार मिल ही नहीं पा रही थी। हमदान के अलावा आस-पास के तमाम क्षेत्रों पर क़ब्ज़ा हो चुका था। मुसलमानों के दूसरी जगहों के जीतने की ख़ूब चर्चा थी। जब हमदान के नागरिकों को इसका पता चला तो उन्होंने पुष्टि के लिए आदमी दौड़ाए। जब उन्हें ख़बर मिली कि मुसलमानों ने सच-मुच आस-पास के तमाम स्थानों को जीत लिया है, तो उनके दिल बैठ गए। विवश हो मुसलमानों से समझौता करके शहर उनके सुपुर्द कर दिया।

वैलम ने जो एक मशहूर सरदार था रय और आज़रबीजान के लोगों को उकसाया कि अरबों को नष्ट-विनष्ट करने के लिए तुम लोगों को अपनी जानें लड़ा देनी चाहिए। अतएव इसी आधार पर उसने एक भारी सेना तैयार कर ली। रय का सरदार जेंवदी पूरी भीड़ लेकर उसमें शामिल हो गया। घमासान लड़ाई छिड़ी, फिर भी वैलम परास्त हुआ और विजय मुसलमानों के हाथ लगी।

अमीरुल मोमिनीन के हुक्म के मुताबिक उत्वा एक भारी सेना लेकर आज़रबीजान की ओर बढ़े। एक मशहूर योद्धा बुकैर, उत्वा की मदद के लिए नियुक्त किए गए थे। जमींदान पर बुकैर का स्फन्दयार से मुक़ाबला हुआ। स्फ़न्दयार गिरफ़्तार हो गया। दूसरी ओर स्फ़न्दयार का भाई बहराम उत्वा के मुक़ाबले में आ डटा, लेकिन उसे ऐसी हार हुई कि मैदान से भाग निकला। स्फ़न्दयार सेनापति के सामने पेश किया गया, तो उसे इस शर्त पर रिहा कर दिया गया कि वह आठ लाख रुपये वार्षिक टैक्स देता रहे।

जब जरजान के सरदार रोज़बान को खबर पहुंची कि मुसलमानों ने रय (ईरान) पर बिना किसी अवरोध के क़ाबू पा लिया है तो उसने नोमान के भाई सुवैद से, जो रय की मुहिम के कमान्डर इन चीफ़ थे, पत्र-व्यवहार करके सुरक्षा-टैक्स (जिज़या) देना मंजूर कर लिया और समझौते के मुताबिक मुसलमान जरजान और दुहतान के रक्षक और शान्ति के ज़िम्मेदार क़रार पाए और यह भी तय पाया कि वे लोग जो सैनिक सेनाएँ मुसलमानों की तरह अदा करेंगे, उन्हें जिज़िया नहीं देना होगा। इसी तरह एक-एक करके तमाम सरदारों ने जिज़िया का अदा करना मंजूर कर लिया और यह बड़ा राज्य, बिना किसी लड़ाई के मुसलमानों के क़ब्ज़े में आ गया।

आज़रबीजान की मुहिम में बुकैर उत्वा के सहायक थे। आज़रबीजान की विजय के बाद बुकैर पूरी सफलता के साथ बाब

की ओर बढ़े। यहां का शासक शहरबराज़ ईरानियों के पराधीन था। मुसलमानों के आने की ख़बर सुनकर वह स्वयं सेनापति की सेवा में उपस्थित हुआ और निवेदन किया कि, जब ईरान जीत लिया गया तो मेरी क्या ताक़त कि मैं मुक़ाबले पर आऊँ। जब कभी सैनिक सेवा की ज़रूरत हो, मैं हाज़िर हूं, इसलिए मुझसे जिज़िया न लिया जाए। चूंकि जिज़िया सिर्फ़ सैनिक सेवा के बदले में लिया जाता था, इसलिए उसे माफ़ किया गया। यहाँ विजय प्राप्त करके मुसलमान सेनाएँ आगे बढ़ीं। शहरबराज़ साथ-साथ चला। अब्दुर्रहमान इब्न रबीआ ने बैज़ा और बुकैर ने क़ान पर विजय प्राप्त करके उसे इस्लामी राज्य में शामिल कर लिया।

फ़ारस की विजय

उस समय फ़ारस उस राज्य का नाम था, जिसके उत्तर में असफ़हान, दक्षिण में फ़ारस सागर पूरब में किरमान और पश्चिम में इराक़े अरब था। इसका सबसे बड़ा और प्रसिद्ध नगर शीराज है।

फ़ारस पर सबसे पहले सन् 17 हि० में आक्रमण हुआ था, मगर उसमें कोई उल्लेखनीय सफलता नहीं प्राप्त हुई थी। यह आक्रमण हज़रत उमर (रज़ि०) की इजाज़त के बिना किया गया था और वे इसके घोर विरोधी थे।

कहा जाता है कि जब हज़रत साद (रज़ि०) ने क़ादसिया पर विजय प्राप्त कर ली, तो हज़रत अली को स्पर्धा हुई, अतः उन्होंने झट सेनाएँ तैयार करके नदी के रास्ते फ़ारस पर आक्रमण कर दिया, यहां तक कि अमीरुलमोमिनीन से इजाज़त लेना भी ज़रूरी न समझा। वह अपनी सेनाओं और जहाज़ों के साथ इस्तख़र पहुंचे। इस्लामी सेनाओं ने जहाज़ों से उतर कर तट पर क़दम जमाया ही था कि शत्रुओं ने जहाजों और सेनाओं को इस ढंग से घेरे में ले लिया कि उनका सिलसिला एक दूसरे से बिल्कुल कट गया, क्योंकि दुश्मन की कोशिश थी कि मुसलमान जहाज़ों के क़रीब बिल्कुल ही न पहुंचने पाएँ। यद्यपि मुसलमानों की हालत बहुत नाज़ुक थी, फिर भी उन्होंने दिल खोल कर मुक़ाबला किया। इस्लामी सेना के सेनापति ने अपनी सेना को सम्बोधित करके कहा, 'मुसलमानो! निरुत्साह न होना, दुश्मन हमारे जहाज़ों को हमसे छीनना चाहता है, लेकिन अगर अल्लाह ने चाहा, तो जहाज़ों के साथ देश भी हमारा होगा।

यद्यपि मुसलमानों की भारी संख्या इस लड़ाई में काम आई, फिर भी वे बड़ी वीरता, साहस और जमाव के साथ दुश्मन के मुक़ाबले पर डटे रहे।

शत्रुओं ने जब अपनी हार के आसार देखे, तो उन्होंने मुसलमानों के जहाज़ डुबा दिए। यद्यपि शत्रु के क़दम उखड़ गए और मुसलमान ही विजयी रहे, मगर वे अपनी भारी संख्या के कट-मर जाने की वजह से आगे नहीं बढ़े। उन लोगों ने थल-मार्ग से बसरा पहुंचने की कोशिश की, मगर ईरानियों ने चारों ओर से राहें बन्द कर रखी थीं और वे घिर कर रह गए।

जब अमीरुलमोमिनीन को तमाम बातें मालूम हुईं तो रोष से भर उठे और अली को बड़ा तेज़ पत्र लिखा।

जो कुछ होना था, वह तो हो चुका था, समस्या थी, बची-खुची सेना को बचाने की। ख़लीफ़ा बराबर इस पर विचार करते रहे। सोच-विचार के बाद उत्बा इब्न ग़ज़वान को लिखा कि अली की सेना को बचाने के लिए अबू सबरा के नेतृत्व में तुरन्त बारह हज़ार की सेना फ़ारस की ओर भेज दी जाए।

इधर ईरानी भी ग़ाफ़िल न बैठे थे। इस बीच उन्होंने हर ओर से सेनाएँ इकट्ठी कर ली थीं, अतएव बड़ी घमासान लड़ाई शुरू हुई। आख़िर ईरानियों के क़दम उखड़ गए और वे युद्ध-क्षेत्र से भाग खड़े हुए।

चूंकि अमीरुल मोमिनीन ने सख़्ती से हुक्म दिया था कि बिना इजाज़त हरगिज़ क़दम न उठाया जाए, इसलिए इस्लामी सेनाएं विवश हो बसरा लौट आईं, लेकिन नहावन्द के बाद जब हज़रत उमर (रज़ि०) ने सेना की आम चढ़ाई का हुक्म दिया तो फ़ारस पर भी सेना चढ़ दौड़ी। पारसियों ने तोज पर पूरी तैयारी के साथ तमाम सेनाओं को इकट्ठा किया। मुसलमानों ने तोज की ओर ध्यान ही न

दिया, बल्कि ख़लीफ़ा के आदेशानुसार एक ही समय में बहुत-सी जगहों पर इस्लामी सेनाएँ पहुंच गईं। मुसलमानों की इस सैनिक चाल से पारसियों के छक्के छूट गए और उन्हें तोज छोड़ कर भाग जाना पड़ा।

फिर मुसलमानों ने एक-एक करके उर्दशेर, तोज, इस्तख़र जीत लिए और धीरे-धीरे बहुत से शहरों पर क़ब्ज़ा कर लिया।

किरमान

इस मुहिम पर सुहैल इब्न अदी नियुक्त किए गए थे। यहाँ के हाकिम ने मुसलमानों का मुक़ाबला किया, लेकिन लड़ाई में मारा गया। उसकी मृत्यु के बाद मुसलमानों के लिए मैदान साफ़ था, इसलिए इस्लामी सेनाएँ, बिना किसी अवरोध के बढ़ती गईं, यहां तक कि बेरफ़्त और यरजान तक, जो कि किरमान की तिजारती मण्डी और मशहूर शहर थे, जा पहुंचीं।

सीस्तान

आसिम इब्न उमर ने सीस्तान पर हमला किया। लोगों ने तत्काल जिज़िया देना स्वीकार कर लिया, इसलिए नहर बल्ख़ से लेकर सिन्ध तक मुसलमानों के लिए मैदान साफ़ हो गया।

मकरान

उसी साल मकरान पर हकम इब्न उमर ने हमला किया। रासिल शाहेमकरान ने स्वयं इस लड़ाई में भाग लिया, ज़बर्दस्त लड़ाई के बाद रासिल की हार हुई और मुसलमानों का मकरान पर अधिकार हो गया। कुछ हाथी, जो लड़ाई में मुसलमानों के हाथ लगे, केन्द्र को भेज दिए गए।

खुरासान

हज़रत उमर (रज़ि०) ने अहनफ़ इब्न कैस को खुरासान की मुहिम के लिए नियुक्त किया था। वह तिब्सैन होते हुए हिरात पहुंचे और उस पर विजय प्राप्त कर मर्दशाहजहाँ की ओर बढ़े। उन दिनों बादशाह यज़्दगुर्द यहीं ठहरा हुआ था। मुसलमानों के आने की ख़बर पाकर उसने चीनी सम्राट से सहायता चाही और अपने में मुसलमानों के मुक़ाबले की शक्ति न पाकर मुसलमानों के पहुंचने से पहले मर्दरूद चला गया। अहनफ़ ने मर्दशाहजहां पर तो हारिसा इब्न नोमान को छोड़ा और खुद मर्दरूद का रुख़ किया। यह सुनकर यज़्दगुर्द यहां से भाग कर बल्ख़ पहुंचा। मुसलमानों की सहायता के लिए कूफ़ा से और अधिक सेनाएं आ पहुंचीं। अहनफ़ ने नई सेना को लेकर बल्ख़ पर हमला किया और यज़्दगुर्द को बुरी तरह परास्त होना पड़ा। मुसलमानों ने नीशापुर से लेकर तख़ारिस्तान तक का पूरा क्षेत्र जीत लिया और मर्दरूद को राजधानी बनाया।

हज़रत उमर (रज़ि०) ने इन विजयों को पसन्द किया, मगर हुक्म दिया कि इस्लामी सेनाएं अब आगे न बढ़ने पाएं।

यज़्दगुर्द हार कर चीनी सम्राट के पास भाग गया और उससे सहायता चाही। सम्राट ने उसका बड़ा आदर-सम्मान किया और एक भारी सेना लेकर स्वयं यज़्दगुर्द के साथ खुरासान की ओर बढ़ा। अहनफ़ चौबीस हज़ार की सेना के साथ बल्ख़ में डेरे डाले पड़े थे। जब उन्हें ख़बर मिली कि यज़्दगुर्द चीनी सम्राट को लिए बढ़ा चला आ रहा है, तो तुरन्त मर्दरूद पहुंच गए। चीनी सम्राट ख़ाक़ान और यज़्दगुर्द दोनों मर्दरूद पहुंचे। स्थिति का अवलोकन करने के बाद ख़ाक़ान तो वहीं ठहरा रहा और यज़्दगुर्द मर्दशाहजहां की ओर बढ़ा। अहनफ़ ने खुले मैदान में लड़ना उचित नहीं जाना, अतः उन्होंने शहर पार करके एक उचित स्थान पर, जिसके पीछे पहाड़

थे, डेरे डाल दिए। एक समय तक दोनों सेनाएं एक-दूसरे के मुक़ाबले में डेरे डाले पड़ी रहीं, मगर कोई लड़ाई न हुई। एक दिन एक सरदार से अहनफ़ का मुक़ाबला हो गया। अहनफ़ ने इस ज़ोर से बरछी मारी कि सरदार का काम तमाम हो गया। एक के बाद एक करके दो और सरदार उनके हाथ से काम आए। संयोग कि उस ओर ख़ाक़ान स्वयं आ निकला और अपने प्रतिष्ठित सरदारों की लाश देखकर बहुत घबराया और शर्मिन्दा हो बोला कि ख़ामख़ाही दूसरों की मुसीबत मोल ली। उस पर इन सरदारों की मौत का यह प्रभाव हुआ कि वह यज़्दगुर्द को सूचित किए बिना अपनी सेना को लेकर वापस चला गया।

जब यज़्दगुर्द को ख़ाक़ान के चले जाने की सूचना मिली, तो बहुत घबराया। आख़िर उसने निश्चय कर लिया कि अपना साज़ो सामान लेकर तुर्किस्तान चला जाए। लेकिन उसके स्वार्थी और भ्रष्ट अधिकारियों ने उसे ऐसा नहीं करने दिया, उन्होंने यज़्दगुर्द की हत्या का षडयन्त्र रच लिया। मगर उसे वक़्त पर पता चल गया और वह अकेले भाग कर ख़ाक़ान की राजधानी फ़रग़ाना जा पहुंचा।

जब हज़रत उमर (रज़ि०) को विजय की सूचना मिली, तो उन्होंने अल्लाह का शुक्र अदा किया और मुसलमानों को हिदायत की कि वे भली ज़िन्दगी गुज़ारें, वरन् उनका भी वही हाल होगा, जो यज़्दगुर्द का हुआ।

मिस्र की विजय

हज़रत अम्र इब्न आस एक अनुभवी कमांडर थे। वे मिस्र में व्यापार किया करते थे। जब आख़िरी बार हज़रत उमर (रज़ि०) ने सीरिया की यात्रा की, तो हज़रत अम्र इब्न आस ने उनसे मुलाक़ात की और मिस्र की स्थिति आदि पर रौशनी डालते हुए उस पर विजय प्राप्त करने की इजाज़त ले ली। यद्यपि हज़रत उमर (रज़ि०) पहले तैयार न थे, लेकिन बाद में इजाज़त भी दे दी, तो इस तरह कि अगर मेरा कोई निषेध पत्र तुम्हारे पास पहुंचे, तो आगे बढ़ने के बजाय उलटे वापस हो जाना।

बहरहाल चार हज़ार की सेना लेकर हज़रत अम्र इब्न आस मिस्र की ओर बढ़े। अभी वे मिस्र की सीमा में प्रवेश ही कर सके थे कि अमीरुल मोमिनीन का पत्र उन्हें मिला कि यदि मसलहत आड़े न आए, तो आगे न बढ़ें। वे उस समय मिस्र के शहर अरीश तक पहुंच चुके थे। उन्होंने अपने सरदारों से परामर्श किया, बात यह तय पाई कि अब वापस लौटना रुसवाई और बदनामी का कारण होगा। इसलिए इस्लामी सेनाओं को आगे बढ़ते रहना जारी रखें और फ़र्मा जा पहुंचे। यह शहर रूम सागर के किनारे स्थित था। रूमी सेनाओं ने ज़बर्दस्त मुक़ाबला किया। एक महीने की भारी कोशिशों के बाद मुलमानों को महान् विजय प्राप्त हुई और रूमी बुरी तरह पसपा हुए। फ़र्मा से सेनाएं बिलीस पहुची, यहाँ मामूली-सी झड़प के बाद शहर पर क़ब्ज़ा हो गया, फिर हज़रत अम्र इब्न आस फ़िस्तात पर बढ़े। जब मिस्र के शासक को जो रूमी

सम्राट क़ैसर के पराधीन था, मुसलमानों के फ़िस्तात की ओर बढ़ने का हाल मालूम हुआ तो वह तुरन्त एक भारी सेना लेकर वहां पहुंच गया। मुसलमानों ने इस क़िले की मज़बूती का अन्दाज़ा लगाया, तो बहुत परेशान हुए, और अमीरुल मोमिनीन को हालात से सूचित किया। हज़रत उमर (रज़ि०) ने 12000 की सेना सहायता के लिए भेज दी। इस सेना में चार प्रसिद्ध कमांडर थे, जिनमें प्रसिद्ध कमांडर ज़ुबैर इब्न अव्वाम भी शामिल थे। एक समय तक घेराव डाले मुसलमान पड़े रहे। आख़िर मुसलमान तंग आ गए। ज़ुबैर इब्न अव्वाम बड़े हौसला वाले इन्सान थे। कुछ साथियों को साथ लेकर क़िले पर जा चढ़े और तकबीर के नारों से ऐसा आतंक पैदा कर दिया कि क़िला वाले यह समझे कि मुसलमान अन्दर दाख़िल हो गए हैं। अतः वे सब आतंकित होकर पलायन-मार्ग ढूंढने लगे। हज़रत ज़ुबैर ने तुरन्त दीवार से नीचे उतर कर क़िले का दरवाज़ा खोल दिया और पूरी इस्लामी सेना भीतर घुस आई।

मक़ूक़स ने, जो मिस्र का शासक था, समझौते का सन्देश भिजवाया, जो मुसलमानों ने स्वीकार कर लिया। जब रूमी सम्राट हिरक़्ल को इन घटनाओं की सूचना मिली, तो वह बहुत रुष्ट हुआ और एक भारी सेना को आदेश दिया कि वह स्कन्दरिया पहुंच कर मुसलमानों का मुक़ाबला करे।

स्कन्दरिया

फ़िस्तात की विजय के बाद सेनापति अम्र इब्न आस ने अमीरुल-मोमिनीन को तमाम हालात की सूचना दी और आगे बढ़ने की इजाज़त चाही। हज़रत उमर (रज़ि०) ने आगे बढ़ने की इजाज़त दे दी।

संयोग ऐसा हुआ कि सेनापति के ख़ेमे में एक कबूतर ने घोंसला बना रखा था. जब सेनापति का ख़ेमा उखाड़ा जाने लगा, तो

उनकी नज़र कबूतर के घोंसले पर पड़ी। अरबों की मेहमानदारी जगप्रसिद्ध है। अतएव सेनापति ने कहा कि यह कबूतर हमारा मेहमान है, इसलिए ख़ेमा न उखाड़ा जाए। खुद तो सेना चली गई और वह ख़ेमा वैसे ही वहीं खड़ा रहा।

फ़िस्तात और स्कन्दरिया के दर्मियान रूमियों की जगह छोटी-छोटी आबादियां थीं। इन सबने एक जुट होकर मुसलमानों का मुक़ाबला किया और उनको आगे बढ़ने से रोका, मगर उन्होंने बुरी तरह मुंह की खाई। हज़रत अम्र इब्न आस बड़ी तेज़ी से इस्लामी सेनाओं के साथ आगे बढ़ते चले गए और स्कन्दरिया आकर दम लिया।

मक़ूकस ने एक मुद्दत के लिए समझौता करना चाहा, मगर ऐसा समझौता मुसलमानों को मंजूर न था। इसलिए हज़रत अम्र इब्न आस ने साफ़ इन्कार कर दिया। शहर वालों ने मुसलमानों को आतंकित करने के लिए किले पर अगणित सेनाएं जमा कर दीं, मगर ये लोग ऐसी बातों को कब ध्यान में लाते थे। उन्होंने शहर वालों को कहला भेजा कि तुम्हें नहीं मालूम कि हम संख्या की अधिकता के आधार पर कभी नहीं लड़े और न कभी भारी संख्याओं का हम पर रोब पड़ा। तुम्हारा सम्राट इस बात को खूब जानता है और हमारे मुक़ाबले में उसे कई बार परास्त होना पड़ा है। मक़ूकस स्वयं इस बात को स्वीकार कर चुका था और वह जानता था कि अरबों के डर से हिरक़्ल कुस्तुन्तुनिया जा पहुंचा था, मगर वह मजबूर था इसलिए चुप रहा।

मक़ूकस किसी प्रकार भी अरबों से लड़ाई करने को तैयार न था। उसकी इच्छा थी कि जिज़िया देकर अरबों से सन्धि कर ली जाए, मगर हिरक़्ल के डर की वजह से ऐसा न करने पर मजबूर था। आख़िर उसने मुसलमानों से खुफ़िया समझौता कर लिया,

जिसके अनुसार तय पाया कि तमाम क़िब्ती अर्थात मक़ूक़स और उसकी जाति के तमाम व्यक्ति मुसलमान के हाथों बिल्कुल सुरक्षित रहेंगे। इसके बदले क़िब्तियों ने, लड़ाई के ज़माने में, न केवल मुसलमानों के मुक़ाबले में आने से परहेज़ किया, बल्कि उनको हर प्रकार की सहायता भी पहुंचायी उन्होंने फ़िस्तात से लेकर स्कन्दरिया तक पुलों की मरम्मत की और स्कन्दरिया के लम्बे घेरे के दिनों में मुसलमानों को रसद पहुंचाते रहे।

कभी-कभी रूमी क़िले से निकल कर मुसलमानों का मुक़ाबला करते। एक दिन एक रूमी ने कहा कि अगर मुसलमानों में कोई योद्धा है, तो आकर मेरा मुक़ाबला करे। मुस्लिमा इब्न ख़ालिद अपना घोड़ा बढ़ाकर उसके मुक़ाबले के लिए निकले, मगर उसने पलक झपकते ही उनको ज़मीन पर पछाड़ दिया और ख़ुद मुस्लिमा के सीने पर सवार हो गया। क़रीब था कि वह उनको ख़ंजर से हलाक कर देता कि एक मुसलमान ने बढ़कर उनकी जान बचाई। हज़रत अम्र इब्न आस को बड़ा गुस्सा आया और उन्होंने मुस्लिमा को बहुत बुरा-भला कहा, मगर वे वक़्त की नज़ाकत को देखकर चुप ही रहे।

कभी एक पक्ष का पलड़ा भारी हो जाता था, कभी दूसरे का लेकिन परिणाम नहीं निकल पाता था। आख़िर एक दिन मुसलमानों ने इस ज़ोर से आक्रमण किया कि रूमियों को धकेलते हुए क़िले के अन्दर जा पहुंचे। वहां बड़ी घमासान लड़ाई हुई। रूमियों ने अपनी पूरी शक्ति लगा कर मुसलमानों को बाहर निकाल दिया क़िले के दरवाज़े बंद कर लिए। संयोग ऐसा हुआ कि सेनापति और मुस्लिमा इब्न ख़ालिद क़िले के भीतर रह गए। रूमियों ने उन्हें ज़िन्दा गिरफ़्तार करना चाहा, मगर उन्होंने तलवारें निकाल लीं। रूमी उनका पराक्रम और धैर्य देखकर दंग रह गए। आख़िर यह तय पाया

कि एक रूमी और एक मुसलमान आपस में लड़े। अगर रूमी योद्धा मारा जाए तो वे इन दोनों को क़िले से बाहर निकल जाने देंगे और अगर मुसलमान मारा जाए तो दूसरा हथियार डाल देगा। मुस्लिमा इब्न ख़ालिद इस विचार से, कि कहीं सेनापति को कोई क्षति न पहुंच जाए, उनको रोक कर स्वयं आगे बढ़े और इस ज़ोर से मुक़ाबला किया कि वह अपनी जान न बचा सका और मारा गया। रूमियों को मालूम न था कि इस्लामी सेनाओं के सेनापति उनके क़ब्ज़े में हैं, इसलिए उन्होंने वायदे के मुताबिक़ क़िले का दरवाज़ा खोल दिया और वे दोनों बाहर चल दिए। हज़रत अम्र ने अपने पहले दुर्व्यवहार की मुस्लिमा से माफ़ी चाही और उन्होंने खुले दिल से उन्हें माफ़ कर दिया, इसलिए कि पहले से उनके मन में दुर्व्यवहार का कोई भाव न था।

घेरा एक मुद्दत तक पड़ा रहा। ज्यों-ज्यों दिन बीतते जा रहे थे, अमीरुलमोमिनीन की चिन्ता बढ़ती जा रही थी। आख़िर अमीरुलमोमिनीन ने सेनापति हज़रत अम्र को लिखा कि लगता है कि तुम ईसाइयों में रहकर उनकी तरह ऐशपरस्त और काहिल हो गए हो, वरन यह सम्भव न था कि घेरा इतना लम्बा हो। मेरा पत्र देखते ही सैनिकों को लड़ने-मरने पर उभारो और लोगों को बताओ कि काहिली की ज़िन्दगी से तो मौत हज़ार गुना बेहतर है।

सेनापति ने ऐसा ही किया, ज़ोरदार भाषण दिया और पूरे जोश के साथ हमले की तैयारियां शुरू हो गईं। फिर हज़रत उबादा इब्ने साबित (रज़ि०) को बुला भेजा, जो प्यारे नबी (सल्ल०) की संगति में बहुत रह चुके थे, बरकत के लिए उनका नेज़ा लिया, झंडा तैयार करके उनको दिया और कहा कि इस लड़ाई में आप हमारे सेनापति हैं, उन प्रसिद्ध योद्धाओं को, जिन्हें अमीरुल मोमिनीन ने कुमुक के साथ भेजा था, सबसे आगे नियुक्त किया। मुसलमानों ने

सिर पर कफ़न बांध कर इस ज़ोर से हमला किया कि दुश्मन का सारा ज़ोर टूट गया, इस प्रकार पहले ही हमले में शहर जीत लिया गया। तुरन्त ख़लीफ़ा की सेवा में अपना एक दूत दौड़ा दिया, चूंकि दोपहर के वक़्त दूत पहुँचा था, उसने सोचा कि अमीरुलमोमिनीन आराम कर रहे होंगे, इसलिए उसने मस्जिदे नबवी की ओर रुख़ किया। अमीरुलमोमिनीन की एक बांदी ने उसे देखा और उसका रंग-रूप देखकर यह समझ गई कि ज़रूर यह व्यक्ति लड़ाई की ख़बर लेकर आया है। अतः उसने अमीरुलमोमिनीन को जाकर ख़बर दे दी। उन्होंने तुरन्त उसे बुलाकर लड़ाई का हाल मालूम किया और विजय की ख़बर पाते ही सज्दे में गिर पड़े, उसी वक़्त मुनादी करा दी गई कि अल्लाह ने मुसलमानों को मिस्र पर भी विजय दे दी।

स्कन्दरिया की विजय के बाद हज़रत अम्र इब्न आस फ़िस्तात को लौट गए और उसे नियोजित ढंग से फिर से आबाद कराया। इस विजय के बाद रूमियों का ज़ोर टूट गया। मुसलमानों ने शांति-स्थापना के लिए देश में जगह-जगह सेनाएँ फैला दीं। लोगों ने राज़ी-ख़ुशी से जिज़िया देना क़ुबूल कर लिया।

सेनापति ने लड़ाई के असंख्य क़ैदियों के बारे में हज़रत उमर (रज़ि०) से हिदायत चाही, वहां से जवाब आया कि उन्हें इस्लाम बताओ, समझाओ, अगर इस्लाम स्वीकार कर लें तो उन्हें अपना जैसा समझो, कोई भेद-भाव न करना और इस्लाम स्वीकार न करें, तो ज़बर्दस्ती न करना, वे जो अक़ीदा रखना चाहें रखें, जिस धर्म को चाहें मानें। हां, अगर वे सैनिक सेवा के लिए अपने को अर्पित करें, तो ठीक है, वरना उनसे सुरक्षा-कर (जिज़िया) लो। इसलिए इनमें से किसी एक शर्त के मानने पर इन क़ैदियों को छोड़ दो।

सेनापति ने इन तमाम क़ैदियों को इकट्ठा करके

अमीरुलमोमिनीन का पत्र सुनाया और साफ़-साफ़ कह दिया कि इन तीनों शर्तों में, जो जी चाहे स्वीकार कर लो, क्योंकि धर्म के मामले में तुम लोगों पर किसी प्रकार की कोई ज़बर्दस्ती नहीं।अतः कुछ तो मुसलमान हो गए और कुछ दूसरी शर्तों पर छोड़ दिए गए।

ख़लीफ़ा की निर्मम हत्या

इराक़े अजम की लड़ाई में एक ईरानी क़ैदी गिरफ़्तार होकर मदीना लाया गया था, जो बड़ा ही क्रूर हृदय था। हज़रत उमर (रज़ि०) ने ईरानी के मदीना में रहने पर कभी सन्तोष नहीं व्यक्त किया था, मगर प्रमुख व्यक्तियों और जन-साधारण के सामान्य मत के कारण वे मौन रहे थे।

जिस विशेष क़ैदी का यहां उल्लेख किया जा रहा है, उसका नाम फ़ीरोज़ था और वह हज़रत मुग़ीरा इब्न शोबा का दास था। वह बढ़ई, लोहारी आदि का काम जानता था। इस ज़ालिम ने एक दिन ख़लीफ़ा उमर (रज़ि०) के पास हाज़िर होकर निवेदन किया कि मुग़ीरा ने मुझ पर बहुत बड़ा टैक्स लगा दिया है, जो मैं अदा करने में असमर्थ हूं। आप ने पूछा कि तुम्हें कितनी रक़म अदा करनी पड़ती है। उसने जवाब दिया कि लगभग पैंतालीस पैसे प्रतिदिन। हज़रत उमर बोले, तुम्हारे पेशों की दृष्टि से यह राशि कुछ अधिक तो नहीं है, इसलिए मैं क्या हस्तक्षेप करूं?

इस समय वह व्यक्ति चुप-चाप चला गया, लेकिन दूसरे दिन सुबह की नमाज में ख़ंजर छिपाए मस्जिद के एक कोने में आ छिपा। सफ़ों (पंक्तियों) के ठीक हो जाने पर हज़रत उमर (रज़ि०) ने यथाविधि नमाज़ पढ़ानी शुरू ही की थी कि उस हत्यारे ने झपट कर हज़रत उमर (रज़ि०) पर ताबड़तोड़ छः वार किए। जब ढोंड़ी के नीचे गहरा घाव हो गया तो उन्होंने हज़रत अब्दुर्रहमान इब्न औफ़ का हाथ पकड़ कर अपनी जगह खड़ा कर दिया और खुद धरती पर गिर पड़े। इतने में फ़ीरोज़ ने कई लोगों को

घायल कर दिया और अन्त में आत्महत्या कर ली।

एक ओर फ़ीरोज़ की यह निर्ममता, क्रूरता और क्षुद्र स्वार्थ के लिए हत्या कर देने की दुष्भावना और दूसरी ओर ईमान वालों का सब्र, सहनशीलता, दुनिया से उदासीन हो अपने स्वामी से गहरा सम्बन्ध जोड़ने की कोशिश, कितना बुनियादी फ़र्क़ होता है, ईमान को दिल में उतार लेने में और न उतार लेने में। नमाज़ से छूटने के बाद जब लोगों ने देखा तो लगा अमीरुलमोमिनीन घायल हो धरती पर तड़प रहे हैं, तुरन्त डॉक्टर बुलाया गया, उसने मरहम पट्टी की और दवाई पिलाई। लोगों का विचार था कि वे स्वस्थ हो जाएंगे, मगर जब उनको दूध पिलाया गया तो वे घाव की ओर से बाहर निकल आया। यह देखकर लोग बहुत घबराए। जो होना है, वह तो होगा ही, लेकिन इस्लामी राज्य को कोई क्षति न आए और केन्द्रीय सरकार मज़बूत रहे, इसे देखते हुए लोगों ने हज़रत उमर (रज़ि०) से कहा, वक़्त की नज़ाकत को देखते हुए बेहतर होगा कि आप अपना उत्तराधिकारी निश्चित कर लें।

अमीरुल मोमिनीन ने अपने बेटे हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) को बुलाया और कहा, 'प्यारे नबी (सल्ल०) की धर्म-पत्नी हज़रत आइशा (रज़ि०) की सेवा में उपस्थित होकर कहो कि उमर (रज़ि०) इजाज़त चाहता है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के पहलू में मुझे दफ़न किया जाए।'

अमीरुल मोमिनीन का सन्देश सुनकर हज़रत आइशा (रज़ि०) ने रोते हुए उत्तर दिया कि यद्यपि मेरा इरादा था कि वह जगह अपने लिए मुख्य कर लूं, मगर अब अमीरुलमोमिनीन हज़रत उमर (रज़ि०) को अपने पर प्रमुखता दूंगी।

हज़रत अब्दुल्लाह ने वापस आकर अपने प्यारे बाप को सूचित किया कि हज़रत आइशा (रज़ि०) उनकी कामना पूरी करने पर तैयार हैं। यह सुनकर हज़रत उमर (रज़ि०) को हार्दिक शान्ति मिल

गइं और अपनी सर्वप्रिय कामना के पूरी होने पर अल्लाह का शुक्र अदा किया।

इसके बाद आपने अपना उत्तराधिकारी चुनने की ओर ध्यान दिया। आपने बहुत सोचा, पर किसी व्यक्ति पर आप का मन सन्तुष्ट न हुआ। काफ़ी सोच-विचार के बाद आप ने छः व्यक्तियों— हज़रत अली, उस्मान, ज़ुबैर, तलहा, साद इब्न वक़्क़ास और अब्दुर्रहमान इब्न औफ़ का नाम लिया कि इन व्यक्तियों में से जिसके बारे में बहुमत पाया जाए, उसे ख़लीफ़ा बना दिया जाए।

हज़रत उमर (रज़ि०) को देश और राष्ट्र के हित व कल्याण का जो ध्यान था, उसका अन्दाज़ा इस से हो सकता है कि उस कष्ट व बेचैनी की हालत में भी, जहां तक उनकी शक्ति काम करती रही और जब तक होश बाक़ी रहा, इसी धुन में लगे रहे। लोगों को सम्बोधित करके कहा कि जो व्यक्ति भी ख़लीफ़ा चुना जाए, उसको मैं वसीयत करता हूं कि वह पांच वर्गों के अधिकारों को मुख्य रूप से ध्यान में रखें— मुहाजिर, (मक्का से बेघर होकर मदीना आये हुए लोग) अन्सार (मुहाजिरों की हर तरह मदद करने वाले मदीनावासी) अरब, (अरब देश के जन-साधारण) वह अरबवासी जो और शहरों में जाकर आबाद हो गए हैं, ज़िम्मी (इस्लामी राज्य की ग़ैर-मुस्लिम प्रजा) फिर हरेक के अधिकारों की व्याख्या की। चुनांचे ज़िम्मियों के हक़ में जो शब्द कहे, वे इस प्रकार थे, 'मैं समय के ख़लीफ़ा को वसीयत करता हूं कि वह अल्लाह की ज़िम्मेदारी और अल्लाह के रसूल की ज़िम्मेदारी को ध्यान में रखे, अर्थात ज़िम्मियों को जो वचन दिया है, वह पूरा किया जाए, उनके दुश्मनों से लड़ा जाए और उनको उनकी ताक़त से ज़्यादा कष्ट न दिया जाए।'

इन ज़रूरी कामों के कर लेने के बाद आपने फिर अपने बेटे हज़रत अब्दुल्लाह को बुलाया, पूछा, 'मुझ पर कितना ऋण है?

मालूम हुआ कि छियासी हज़ार दिरहम। फ़रमाया कि मेरी जायदाद बेच कर यह ऋण अदा कर दी जाए। अगर इससे पूरा न हो सके तो अदी परिवार कुरैश से लेकर यह ऋण कौड़ी-कौड़ी अदा कर दे, लेकिन बैतुलमाल (राज-कोष) के रुपये को हरगिज हाथ न लगाया जाए, क्योंकि उस का हक़दार मैं नहीं बल्कि ग़रीब हैं। अमीरुल मोमिनीन का मकान बेचा गया। अमीर मुआविया ने उसको छियालीस हज़ार दिरहम में ख़रीद लिया और उससे पूरा ऋण अदा हो गया।

प्राण निकलने से कुछ क्षण पहले आपने कहा, जब मेरा जनाज़ा लेकर मुझे दफ़न करने के लिए जाओ तो हज़रत आइशा से फिर पूछ लेना कि उमर अन्दर आने की इजाज़त चाहता है। अगर वे खुशी के साथ इजाज़त दे दें, तो मुझे अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के पहलू में दफ़न कर देना और अगर वे इजाज़त न दें, तो फिर आम मुसलमानों के क़ब्रिस्तान में मुझे दफ़ना देना।

तात्पर्य यह कि इस्लामी राज्य का द्वितीय ख़लीफ़ा अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का प्रेमी, इस्लामी सिद्धान्तों को अमली जामा पहनाने वाला, मुस्लिमों, ग़ैर-मुस्लिमों को समान भाव से देखने वाला, विशुद्ध कल्याणकारी राज्य की स्थापना करने वाला, लगभग चौथाई दुनिया का शासक ज़मीन के नीचे दफ़न कर दिया गया।

हर व्यक्ति दुखी था, आंखें भीगी हुई थीं और कलेजा मुंह को निकला चला आ रहा था। हज़रत उस्मान, हज़रत तलहा, साद इब्न वक़्क़ास, अब्दुर्रहमान इब्न औफ़ और हज़रत अली (रज़ि०) ने आपको क़ब्र में उतारा। प्यारे नबी (सल्ल०) की आरामगाह के पहलू ही में आप की भी आरामगाह है। इस प्रकार वह व्यक्ति जिसके दबदबे, रोब और जलाल से बड़े-बड़े सम्राट कांपते थे और जो देश और राष्ट्र के लिए सरासर दर्द और मुहब्बत था, हमेशा के लिए गहरी नींद सो गया।

लड़ाइयों पर एक विहंगम दृष्टि

पिछले पृष्ठों में लड़ाइयों के उल्लेख से इतनी बात तो स्पष्ट हो गई होगी कि हज़रत उमर (रज़ि०) के समय में मुसलमानों में कितना जोश, कितना उत्साह, इस्लाम के लिए लड़ने-मरने की कितनी प्रबल उत्सुकता पाई जाती थी। प्रश्न पैदा हो सकता है कि कुछ रेगिस्तानी बद्दुओं ने किस प्रकार फ़ारस और रूम पर शानदार विजय प्राप्त कर ली? क्या यह इतिहास का कोई अपवाद है? आख़िर इसका कारण क्या था? क्या इन घटनाओं की तुलना सिकन्दर और चंगेज़ की विजयों से की जा सकती है? जो कुछ हुआ, उसमें ख़लीफ़ा का कितना हाथ रहता था? आदि, आदि।

हम चाहते हैं कि इन पृष्ठों में इन्हीं प्रश्नों का उत्तर खोजने की कोशिश की जाए।

हज़रत उमर (रज़ि०) के विजित देशों और राज्यों का कुल क्षेत्रफल 2251030 वर्गमील था अर्थात् मक्का से उत्तर की ओर 1036, पूरब की ओर 1087 दक्षिण की ओर 483 मील था। पश्चिमी की ओर, चूंकि केवल जिद्दा तक राज्य-सीमा थी, इसलिए वह उल्लेखनीय नहीं।

इन विजित क्षेत्रों में सीरिया, मिस्र, इराक़ जज़ीरा, ख़ूजिस्तान इराक़ेअजम, आरमीनिया, आज़रबाईजान, फ़ारस, किरमान, ख़ुरासान और मकरान शामिल था।

शानदार विजय का रहस्य

इसमें सन्देह नहीं कि उस समय रूम और फ़ारस सामरिक कला-कौशल की दृष्टि से अपने उत्कर्ष को पहुंचे हुए थे, नए-नए अस्त्र-शस्त्र, सैनिकों की अधिक संख्या, दक्ष सेनापति, साधनों की रेल-पेल, इन तमाम चीज़ों के कारण उन्हें अरबों पर बहरहाल प्रधानता प्राप्त थी, लेकिन मुसलमानों में उस समय इस्लाम के प्रवर्तक हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के कारण जो उत्साह, जो हौसला, जो साहस, जो उमंग और जो शौर्य भर उठा था और जिसे हज़रत उमर (रज़ि०) ने और अधिक उभार दिया था, रूम और फ़ारस के साम्राज्यों के लिए अपनी पूरी शक्ति और साधन सम्पन्नता के बाद भी उसका मुक़ाबला करना आसान न था। इस प्रकार विजय तो बहरहाल प्राप्त हो गई, पर विजय के साथ-साथ स्थाई सरकार और अच्छे प्रशासन के मिल जाने के कारण इस्लाम के पैदा किए हुए चरित्र व आचरण की धाक भी बैठती चली गई। अल्लाह का डर और मरने के बाद अपने कर्मों की जवाबदेही के एहसास ने मुसलमानों में इतनी सच्चाई और ईमानदारी भर दी थी कि जिस राज्य में भी विजय प्राप्त करके प्रवेश करते, वहां की जनता इससे इतना प्रभावित होती कि अलग धर्म के अनुयायी रहते हुए भी, उन्हें मुस्लिम शासन का पतन पसन्द न था। यरमूक की लड़ाई में मुसलमान जब सीरिया के ज़िलों से निकले, तो तमाम ईसाई जनता ने पुकारा कि 'ख़ुदा तुम को फिर इस देश में लाए।' और यहूदियों ने तौरात हाथ में लेकर कहा कि हमारे जीते-जी क़ैसर अब यहां नहीं आ सकता। हां! ईरान की हालत इससे भिन्न थी, वहां केन्द्र के अधीन बहुत-से बड़े-बड़े सरदार थे, जो बड़े-बड़े ज़िलों और प्रान्तों के मालिक थे, वे केन्द्र के लिए नहीं, बल्कि स्वयं अपनी सत्ता को बाक़ी रखने के लिए लड़ते थे। यही कारण है कि राजधानी पर विजय प्राप्त कर लेने के बाद भी फ़ारस में हर क़दम पर मुसलमानों

को कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, लेकिन सामान्य जनता, वहां भी मुसलमानों से प्रभावित होती गइं और इसीलिए विजय के बाद शासन को सुदृढ़ बनाने में उनसे बड़ी मदद मिली और मिलती चली गई।

सामान्यतः विजेता और उसकी सेनाएं अपने विजित क्षेत्रों पर अत्याचार की हद कर दिया करती हैं, लेकिन हज़रत उमर (रज़ि०) जैसे महान विजेता की ओर से न्याय व दया के अलावा और कोई आदेश नहीं जारी किया गया। उन्होंने क़त्लेआम तो बड़ी बात, पेड़ों के काटने तक की इजाज़त नहीं दी थी। उन्होंने आदेश दे रखा था कि बच्चों और बूढ़ों से बिल्कुल छेड़खानी न की जाए, दुश्मन से कभी किसी मौक़े पर किए गए वायदे को समझौते के रहते हुए न भंग किया जाए, न छल-कपट से काम लिया जाए। अधिकारियों को खुला आदेश था कि 'शत्रु तुमसे लड़ाई करें, तो उन्हें धोखा न दो, किसी की नाक-कान न काटो, किसी बच्चे को क़त्ल न करो।'

यह तो सही है कि हज़रत उमर ख़िलाफ़त की पूरी मुद्दत में एक बार भी किसी लड़ाई में शरीक नहीं हुए, लेकिन यह बात भी अपनी जगह पर सही है कि उस समय की शानदार विजय का बड़ा रहस्य यह भी था कि प्रशासन को सुदृढ़ बनाने के साथ-साथ हज़रत उमर (रज़ि०) ने इन लड़ाइयों में पूरी दिलचस्पी ली थी, पूरा उत्साह दिखाया था, वे सेनाओं की पूरी गतिविधियों का ज्ञान रखते थे, मानो सेनापति के माध्यम से पूरी सेनाओं का संचालन वही किया करते थे। सेना का क्रम, सैनिक अभ्यास, बैरकों के निर्माण, घोड़ों की देखभाल, क़िलों की हिफ़ाज़त जाड़े और गर्मी की दृष्टि से आक्रमणों का निर्धारण, डाक पहुंचाने का प्रबन्ध, सैनिक अधिकारियों की नियुक्ति, क़िला तोड़ अस्त्रों का इस्तेमाल, ये और इस तरह की बहुत-सी बातें हैं, जिनसे साफ़ ज़ाहिर होता है कि

हज़रत उमर (रज़ि०) के बिना यह मशीन काम नहीं कर सकती थी। फिर हज़रत उमर (रज़ि०) जैसा उत्साही व दृढ़ संकल्पी व्यक्ति स्वयं किसी मामले में दिलचस्पी ले, तो उसकी सफलता संदिग्ध नहीं रहती। हज़रत उमर (रज़ि०) के समय की लड़ाइयों के साथ कुछ ऐसी ही स्थिति थी।

शासन-व्यवस्था

इस्लाम ने जिस शासन-व्यवस्था को अपनाया है, उसे 'ख़िलाफ़त' कहते हैं और सर्वोच्च शासनाधिकारी को 'ख़लीफ़ा' कहते हैं। ख़िलाफ़त-व्यवस्था तानाशाही की अति विरोधी है। बादशाही से भी इसका कोई मेल नहीं। ख़िलाफ़त आज के लोकतन्त्र की तरह भी नहीं कि जिसमें या तो भीड़तन्त्र पनपती है या 'लोक' के नाम पर किसी एक दल या दल के किसी प्रमुख की मनमानी चलती है। ख़िलाफ़त-व्यवस्था सही अर्थों में लोकतंत्र है। लोकतन्त्र का सही रूप अगर देखना है तो हज़रत उमर (रज़ि०) के शासन-काल पर अवश्य ही दृष्टि डालनी चाहिए।

हज़रत उमर (रज़ि०) का शासन काल सही अर्थों में लोकतन्त्र का प्रतिनिधि काल था। हर छोटे-बड़े मामले में मज्लिसे शूरा (मन्त्रणा परिषद्) से मशविरा ज़रूर कर लिया जाता, यह मज्लिस केन्द्र में भी थी और राज्यों में भी। मज्लिसे शूरा के लोग किसी दल विशेष या किसी गुट विशेष से न सम्बन्ध रखते, न अपने हित वह स्वार्थ को लेकर देश व राष्ट्र या सत्य के स्वार्थ या हित को आघात पहुंचाते। निष्पक्ष भाव से जो बात सच्ची होती, वही कहते, वही मशविरे देते।

मामूली और रोज़मर्रा के मामलों में इस मज्लिस के फ़ैसले बड़े महत्वपूर्ण होते थे, लेकिन जब कोई अहम मामला होता तो मशविरे में देश के दूसरे प्रतिनिधि जन भी शरीक कर लिए जाते, मानो यह एक प्रकार की वृहत् सभा थी, जिसमें हर वर्ग के लोगों का

प्रतिनिधित्व पाया जाता था। सन् 21 हि० में जब नहादन्द की बड़ी लड़ाई हुई थी और ईरानियों ने भारी सेना लेकर आक्रमण किया था, उस समय जनता की इच्छा थी कि इस लड़ाई में स्वयं ख़लीफ़ा हज़रत उमर (रज़ि०) भी शामिल हों, तो वृहत् सभा ही बुलाई गई थी और बहुमत से निर्णय किया गया था कि हज़रत उमर (रज़ि०) का युद्ध-स्थल में जाना उचित नहीं है।

फिर हज़रत उमर (रज़ि०) के शासन-काल में जनता अपने कर्त्तव्यों और अधिकारों से भली-भांति परिचित थी। हज़रत उमर (रज़ि०) ने बार-बार इस बात का ऐलान किया था कि लोगों का कर्तव्य है कि अपने अधिकारों की सुरक्षा करें और ख़लीफ़ा तक पर आलोचना करने का अधिकार सबको है।

ख़िलाफ़त-काल में जन-साधारण को प्रशासनिक मामलों में कुछ भी कहने-सुनने और मशविरा देने का पूरा-पूरा अधिकार प्राप्त था। राज्यों और ज़िलों के अधिकारियों की नियुक्ति प्रायः जनता की मर्ज़ी को दृष्टि में रख कर की जाती थी, बल्कि कभी-कभी तो चुनाव की शक्ल पैदा हो जाती थी। कूफ़ा, बसरा और सीरिया में जब अधिकारियों की नियुक्ति की बात आई, तो हज़रत उमर (रज़ि०) ने इन तीनों राज्यों में आदेश भेजे कि वहां के लोग अपनी-अपनी पसन्द से एक-एक व्यक्ति चुन कर भेजें, जो उनके नज़दीक तमाम लोगों से अधिक सच्चरित्र, सूझ-बूझ वाले और योग्य हों। हज़रत साद इब्न अबी वक्क़ास बहुत बड़े सहाबी और योग्य पुरुष थे। हज़रत उमर ने उनको कूफ़े का गवर्नर नियुक्त किया था, लेकिन जब लोगों ने उनकी शिकायत की, तो उन्हें पदच्युत कर दिया गया।

किसी भी लोकतंत्र की यह सबसे बड़ी पहचान है कि हर आदमी को अपने अधिकार और हित की सुरक्षा का पूरा-पूरा मौक़ा दिया जाए। हज़रत उमर (रज़ि०) का ख़िलाफ़त-काल इस दृष्टि से

भी बेहतरीन लोकतन्त्र का प्रमाण जुटाता था। आपके राज्य में हर व्यक्ति को पूरी स्वतंत्रता थी, लोग खुले तौर पर अपने विचार व्यक्त करते थे। तमाम ज़िलों से लगभग हर वर्ष शिष्टमंडल आया करते। इसका उद्देश्य इसके अलावा कुछ न होता था कि खलीफ़ा को हर प्रकार के हालत से परिचित कराया जाए।

सही लोकतंत्र तो यही है कि शासक व शासित सभी समान हों। किसी भी शासक को यह अधिकार न प्राप्त हो कि उस पर सामान्य क़ानून का प्रभाव न पड़े, वह देश की आमदनी में से ज़िंदगी की ज़रूरतों से अधिक न ले सके, उसके अधिकार सीमित हों, हर व्यक्ति को उस पर आलोचना का अधिकार हो। ये तमाम बातें हज़रत उमर (रज़ि०) के समय में अपनी चरम सीमा को पहुंच गई थीं और इसलिए हुईं थीं कि हज़रत उमर स्वयं चाहते थे।

एक मौके पर एक व्यक्ति ने हज़रत उमर (रज़ि०) को सम्बोधित करके फ़रमाया कि हे उमर! अल्लाह से डर! उपस्थित जनों में से एक व्यक्ति ने उसको रोका और कहा कि बस, बहुत हो गया। हज़रत उमर (रज़ि०) ने कहा, नहीं;कहने दो। अगर ये लोग न कहें तो ये बेकार के लोग हैं और हम लोग न मानें, तो हम किसी काम के नहीं।

हज़रत उमर (रज़ि०) ने अपनी जनता पर पूरी तरह स्पष्ट कर दिया था :

'मुझको तुम्हारे माल (अर्थात् बैतुलमाल) में केवल उतना हक़ है, जितना यतीम के सरपरस्त को यतीम के माल में। अगर मेरा अपना धन हो तो कुछ न लूँ और ज़रूरत पड़े तो ज़रूरत भर खाने को ले लूँ।'

हज़रत उमर (रज़ि०) का प्रशासन

हज़रत उमर (रज़ि०) पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने मीलों में फैले हुए इस्लामी राज्य के प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए समूचे देश को विभिन्न प्रान्तों में बांट रखा था। प्रान्त, ज़िला और परगना उन्हीं की ईजाद है।

उन्होंने समूचे देश को आठ प्रान्तों— मक्का, मदीना, सीरिया, जज़ीरा, बसरा, कूफ़ा, मिस्र और फ़िलस्तीन में बांट रखा था। बाद में खुरासान, आज़रबाइजान और फ़ारस तीन प्रान्तों की वृद्धि हुई।

प्रान्तों का सबसे बड़ा अधिकारी गवर्नर (वाली) हुआ करता था। इसके अलावा दूसरे पदाधिकारी इस प्रकार हुआ करते थे— साहिबुलख़िराज अर्थात कलेक्टर, साहिबे अहदास अर्थात् पुलिस अधिकारी, साहिबे बैतुलमाल; अर्थात् वित्त-अधिकारी, काज़ी अर्थात् मजिस्ट्रेट या जस्टिस। हर प्रान्त में एक सैनिक अधिकारी भी होता था, लेकिन अधिकतर प्रान्त का गवर्नर ही इस सेवा-भार को संभालता था। पुलिस विभाग भी हर प्रान्त में अलग न था, कलेक्टर ही इस काम को अंजाम दे लिया करता था।

प्रान्तों और ज़िलों के विभाजन के बाद, सबसे महत्वपूर्ण जो कार्य होता है, वह है पदाधिकारियों का चुनाव और नियुक्ति और उनके कर्त्तव्यों और अधिकारों की सूची। इन मामलों में अगर चौकसी और मुस्तैदी न दिखाई जाए और केन्द्रीय सरकार मनमानी करती रहे तो प्रशासनिक ढांचे के अस्त-व्यस्त होने में कुछ अधिक देर नहीं लगती और पूरे देश की शांति-व्यवस्था ख़तरे में पड़ जाती है।

राज्य चलाने की इस नीति के सम्बन्ध में हज़रत उमर (रज़ि०) की चौकसी और मुस्तैदी देखने की चीज़ थी। हर महत्वपूर्ण पद पर योग्यतम अधिकारियों को ही नियुक्त किया। गवर्नर नियुक्त करने का मामला हो या सेनापति की नियुक्ति का, वित्ताधिकारी का मामला हो या जज की नियुक्ति का, आपनें मशविरा करके उन्हीं को ये पद दिए जो उसके योग्य थे। हर अधिकारी को उसके कर्त्तव्य और अधिकार साफ़-साफ़ बता दिए जाते थे। गवर्नरों की नियुक्ति में अधिक सावधानी दिखाई जाती थी। उससे वचन लिया जाता था कि वह :—

1. तुर्की घोड़े पर सवार न होगा,
2. बारीक कपड़े न पहनेगा,
3. छना हुआ आटा न खाएगा,
4. दरवाज़े पर दरबान न रखेगा,
5. ज़रूरतमंदों के लिए दरवाज़ा हमेशा खुला रखेगा आदि।

जिस समय कोई गवर्नर नियुक्त होता था, उसके पास जितना धन होता था, जितनी जायदादें होती थीं, उसकी विस्तृत सूची तैयार कर सुरक्षित रख दी जाती थी। अब अगर गवर्नर की आर्थिक दशा में काफ़ी सुधार हो जाता था और असाधारण वृद्धि हो जाती थी, तो उसकी पकड़ की जाती थी।

तमाम अधिकारियों को हुक्म था कि वे हर वर्ष हज के समय में हज करने आएँ। उस अवसर पर पूरे देश से हर ख़ास व आम जमा होते ही थे। हज़रत उमर (रज़ि०) खड़े होकर ऐलान फ़रमा देते कि जिस किसी को किसी अधिकारी से कुछ शिकायत हो, पेश करे। अतः छोटी शिकायतें भी पेश होनेलगती थीं, फिर उनकी जांच होती थी और उन शिकायतों को दूर करने की भरपूर कोशिश की जाती थी। एक बार ऐसे ही एक अवसर पर एक व्यक्ति ने उठकर शिकायत की कि आपके फ़्लां अधिकारी ने मुझ को निरपराध सौ

कोड़े मारे हैं। हज़रत उमर ने हुक्म दे दिया कि उस अधिकारी को सौ कोड़े अब यह व्यक्ति लगाए। कुछ लोगों ने आपत्ति की कि आप अधिकारियों को इस तरह अपमानित कराएंगे तो काम कैसे चलेगा। लेकिन हज़रत उमर (रज़ि०) को यह आपत्ति मान्य न हुई। फिर लोगों ने उस व्यक्ति को समझा बुझा कर कुछ मुआवज़ा ले-देकर राज़ी कर लिया। इस तरह यह विवादास्पद संकट टल गया। गवर्नरों के विरुद्ध की गई शिकायतों की जाँच के लिए कभी कमीशन भी बिठा दिया जाता था। जब हज़रत अबू मूसा अशअरी, गवर्नर बसरा के ख़िलाफ़ लोगों ने शिकायतें कीं, तो उनकी जाँच एक कमीशन के ज़रिए ही कराई गई थी।

अधिकारियों की ग़लतियों की बड़ी कड़ी पकड़ की जाती थी, मुख्य रूप से ऐसी ग़लतियों की जिनसे पद का दिखावा, भेद-भाव या नुमाइश का भास होता था। जिस अधिकारी के बारे में मालूम हो जाता था कि वह रोगियों की देख-भाल नहीं करता, या कमज़ोरों को उसके दरबार तक पहुंचने का अवसर नहीं मिल पाता, उसे तुरन्त मुअत्तल कर दिया जाता था। कहा जाताहै कि एक बार हज़रत उमर (रज़ि०) बाज़ार से गुज़र रहे थे। एक ओर से आवाज़ आई कि उमर! क्या अधिकारियों के कुछ विधान बना देने से तुम अल्लाह के अज़ाब से बच जाओगे? क्या तुम्हें मालूम है कि अयाज़ इब्न ग़नम, जो मिस्र का अधिकारी है, बारीक कपड़े पहनता है और उसके दरवाज़े पर पहरेदार मुक़र्रर है? हज़रत उमर ने मुहम्मद इब्न मुस्लिमा को बुलाया और कहा कि अयाज़ को, जिस हाल में पाओ, साथ लाओ। मुहम्मद इब्न मुस्लिमा ने वहां पहुंच कर देखा, सच में दरवाज़े पर पहरेदार खड़ा था और अयाज़ बारीक कपड़े का कुरता पहने बैठे थे। इसी हाल में वे अयाज़ को लेकर मदीना चले आए। हज़रत उमर (रज़ि०) ने तुरन्त वह कुरता उतरवा कर मोटा कुरता पहना दिया और बकरियों का एक रेवड़ मंगवाकर आदेश

दिया कि जंगल में ले जाकर चराओ। अयाज़ इन्कार का साहस तो न बटोर सके, मगर बार-बार कहते थे कि इससे तो मर जाना बेहतर है।

हज़रत साद इब्ने अबी वक़्क़ास (रज़ि०) ने कूफ़ा में अपने लिए एक महल बनवाया था, जिसमें ड्योढ़ी भी थी। हज़रत उमर (रज़ि०) ने इस विचार से कि इससे ज़रूरतमंदों के लिए रुकावटें खड़ी होंगी, मुहम्मद इब्न मुस्लिमा को नियुक्त किया कि जाकर ड्योढ़ी में आग लगा दें, चुनाँचे इस हुक्म का पूरा पालन हुआ और साद इब्ने अबी वक़्कास चुपचाप देखा किए। हज़रत उमर (रज़ि०) ने बराबरी की जो रूह देश में फूंकी थी, वह इसके बिना सम्भव न थी। हज़रत उमर (रज़ि०) इस बात की तह में भी उतर चुके थे कि घूसख़ोरी और भ्रष्टाचार को समाप्त करने के लिए यह ज़रूरी है कि गवर्नरों और दूसरे अधिकारियों की तनख़्वाहें उचित और अधिक हों। अतः गवर्नरों की तनख़्वाहें उस समय, जबकि हर चीज़ सस्ती थी, पाँच-पाँच हज़ार मुक़र्रर की गई थी।

वित्त-विभाग

नियमित रूप से वित्त विभाग की स्थापना हज़रत उमर (रज़ि०) का बड़ा महत्वपूर्ण कारनामा है। सन् 16 हि० में जब इराक़े अरब पर पूरा क़ब्ज़ा हो गया और यरमूक की विजय से रूमियों की शक्ति टूट गई तो हज़रत उमर (रज़ि०) ने इस ओर विशेष ध्यान दिया।

इस सम्बन्ध में उस समय तक की यह नीति भी एक बाधा थी कि विजित क्षेत्र लड़ने वाले सैनिकों की मिल्कियत बन जाता था और यह उनकी जागीर समझी जाती थी और वहां के लोग उनके दास। पर हज़रत उमर (रज़ि०) इस नीति के कट्टर विरोधी थे और चाहते थे कि अगर राज्य की वित्तीय स्थिति को सुधारना है, तो इसे समाप्त होना चाहिए। हज़रत उमर (रज़ि०) का विचार था कि अगर हम इस नीति को स्वीकार कर लें तो हुकूमत कैसे चलेगी, सेनाएँ कैसे तैयार होंगी, विदेशी आक्रमणों से प्रतिरक्षा के लिए रुपये कहां से आएंगे, शान्ति-व्यवस्था की स्थापना के लिए ख़र्च कैसे पूरे होंगे। अन्ततः मन्त्रणा-परिषद् में यह समस्या रखी गई। समर्थन और विरोध में हर प्रकार की दलीलें आईं और यह नियम हमेशा के लिए बना दिया गया कि जिन क्षेत्रों पर भी विजय प्राप्त की जाए, वे सेना की न मिल्कियत हो बल्कि राज्य की सम्पत्ति समझी जाएंगी।

इस नियम के बन जाने के बाद हज़रत उमर (रज़ि०) ने विजित क्षेत्रों के बन्दोबस्त पर ध्यान दिया। इराक चूंकि अरब से बहुत करीब और अरबों के आबाद हो जाने के कारण अरब का एक

प्रान्त बन गया था, सबसे पहले उसे हाथ में लिया। हज़रत साद इब्न अबी वक़्क़ास के ज़िम्मे जनगणना का काम किया गया। यहां यह स्पष्ट रहे कि सबसे पहली जनगणना हज़रत उमर (रज़ि०) ने ही कराई थी और उसी समय यह तय किया गया था कि हर बीस वर्ष बाद जनगणना अवश्य हुआ करेगी। सारी ज़मीन इस तरह नापी गई, जैसे कपड़ा नापा जाता है। हज़रत उमर (रज़ि०) ने यह पैमाना स्वयं अपने हाथ से तैयार किया था और उस्मान इब्न हुज़ैफ़ा इब्न रैहान को इस कार्य के लिए नियुक्त किया था। कई महीनों तक यह काम जारी रहा जांच के नतीजे में पहाड़ों और जंगलों और नहरों को छोड़कर कृषि योग्य ज़मीन के आंकड़े मालूम कर लिए गए। शाही ज़ागीरों, धर्म-स्थानों, सड़कों आदि की ज़मीनें भी इस ज़मीन में शामिल न थीं, इन्हें पहले ही अलग कर दिया गया था। इन ज़मीनों को उनके पुराने क़ब्ज़ादारों को देकर उस पर लगान लगा दी गई, जो बहुत ही मामूली थी और जिसे लोग ख़ुशी-ख़ुशी देने पर तैयार थे। जिस सुचारू रूप से यह बन्दोबस्त किया गया, उसका फल यह निकला कि बहुत-सी बेकार ज़मीनें भी अनाज उगलने लगीं और कृषि उत्पादन बहुत तेज़ी से बढ़ गया।

कृषि-उत्पादन बढ़ाने के लिए हज़रत उमर (रज़ि०) ने सिंचाई का प्रबन्ध बड़ा अच्छा करा दिया था। तमाम विजित क्षेत्रों में नहरें जारी कराईं और बांध बांधने, तालाब तैयार कराने, पानी का विभाजन करके मुहाने बनवाने, नहरों की शाखाएं, खुलवाने के लिए एक बड़ा विभाग क़ायम किया। अल्लामा मिक़रीज़ी के कथनानुसार फ़ारस और मिस्र में एक लाख बीस हज़ार मज़दूर रोज़ाना साल भर इस काम में लगे रहते थे और राजकोष (बैतुलमाल) से पूरा ख़र्च अदा किया जाता था। इसका नतीजा यह निकला कि लगभग सभी बेकार ज़मीनें कृषि योग्य हो गईं, अनाज की पैदावार बढ़ी और लगान और पैदावार का दसवां-बीसवां भाग

(उश्र) ज़कात के रूप में राज्य-कोष में जमा होकर सरकारी ख़ज़ाने को मालामाल करता रहा।

आमदनी के दूसरे साधन

इस लगान और उश्र के अलावा आमदनी के कुछ और साधन भी थे जो राज्यकोष को बराबर सुदृढ़ बनाए रखते थे जैसे :–

जकात

ज़कात मुसलमानों के लिए मुख्य थी और मुसलमानों की किसी भी क़िस्म की आमदनी इसका अपवाद न थी, यहां तक कि भेड़ बकरी, ऊँट पर भी ज़कात थी। ज़कात हर उस मुसलमान पर फ़र्ज़ थी, जिसके पास 52.5 तोला चांदी या उसके मूल्य के बराबर रुपये एक वर्ष तक बचे रह जाएं। ऐसे तमाम मुसलमानों के लिए ज़रूरी था कि वे अपनी जमा की हुई रक़म का 2.5 प्रतिशत ज़कात के रूप में निकाल कर केन्द्र सरकार के हवाले कर दें। भेड़-बकरी-ऊँट के लिए और व्यापार की चीज़ों के लिए भी ज़कात के नियम हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के समय में ही तैयार हो चुके थे और इस पर सख़्ती से अमल होता था। हज़रत उमर (रज़ि०) के शासन-काल में जो वृद्धि हुई, वह यह थी कि व्यापार के घोड़ों पर ज़कात मुक़र्रर कर दी गई। इस प्रकार ज़कात की इस नई मद से सरकारी आमदनी में एक और वृद्धि हो गई।

उश्र

उश्र ख़ास हज़रत उमर (रज़ि०) की ईजाद है। शुरूआत इस तरह हुई कि मुसलमान, जो विदेशों में व्यापार के उद्देश्य से जाते थे, उनसे वहां के नियमानुसार व्यापार-सामग्री पर दस प्रतिशत टैक्स लिया जाता था। हज़रत अबू मूसा अशअरी ने हज़रत उमर (रज़ि०) को इससे सूचित किया। हज़रत उमर ने आदेश दिया कि इन देशों के जो व्यापारी हमारे देश में आएं, उनसे भी उतना ही टैक्स लिया जाए। मुंज के ईसाइयों ने, जो उस समय तक इस्लामी

राज्य के अधीन नहीं हुए थे, स्वयं हज़रत उमर (रज़ि०) के पास लिखित आवेदन-पत्र भेजा कि हमको दस प्रतिशत टैक्स अदा करने की शर्त पर अरब में व्यापार करने की इजाज़त दी जाए। हजरत उमर (रज़ि०) ने इसे मंजूर कर लिया और फिर जिम्मियों और मुसलमानों पर भी यह नियम लागू कर दिया गया। धीरे-धीरे हज़रत उमर (रज़ि०) ने तमाम विजित क्षेत्रों में इस नियम को लागू करके एक प्रमुख विभाग खोल दिया, जिससे बहुत बड़ी आमदनी हो गई। यह टैक्स मुख्य रूप से व्यापार-सामग्री पर लिया जाता था और उसके आयात-निर्यात की अवधि एक वर्ष की थी अर्थात् व्यापारी एक वर्ष तक जहां-जहां चाहे, माल ले जाए, उससे दोबारा टैक्स नहीं लिया जाता था। यह भी नियम था कि दो सौ दिरहम से कम मूल्य के माल पर कुछ नहीं लिया जाएगा। हज़रत उमर (रज़ि०) ने टैक्स वसूल करने वालों को यह भी ताकीद कर दी थी कि खुली हुई चीज़ों से यह टैक्स लिया जाए और इसके लिए सामान की तलाशी न ली जाए।

जिज़िया

जिज़िया वह टैक्स है जो इस्लामी राज्य की ग़ैर-मुस्लिम प्रजा के कुछ व्यक्तियों से सुरक्षा के मुआवज़े के तौर पर लिया जाता था। दूसरे शब्दों में इसे सुरक्षा-कर कहा जा सकता है। यही कारण है कि जब यरमूक की लड़ाई के कारण इस्लामी सेनाएं सीरिया के पश्चिमी भागों से हट आईं और उन्हें यक़ीन हो गया कि जिन नगरों से वे जिज़िया वसूल कर चुकी हैं, जैसे हम्स, दमिश्क आदि वहां की सुरक्षा का भार अब वे सहन नहीं कर सकते, तो जिज़िया से जितनी भी रक़म वसूल हुई थी, सब वापस कर दी और साफ़ कह दिया कि इस समय हम तुम्हारे जान व माल की हिफ़ाज़त के ज़िम्मेदार नहीं हो सकते। इसलिए जिज़िया लेने का भी हमें अधिकार नहीं।

फिर यह कि जिज़िया हर ग़ैर-मुस्लिम से लिया नहीं जाता था। जिन लोगों की कभी किसी सैनिक सेवा से लाभ उठाया गया, उनको अपने धर्म पर रहते हुए भी, जिज़िया से माफ़ रखा गया। हज़रत उमर (रज़ि०) ने स्वयं इराक़ के अधिकारियों को लिख भेजा था कि सैनिकों में से जिससे मदद लेने की ज़रूरत हो, मदद लो और उन का जिज़िया छोड़ दो।

न्याय-विभाग

यह विभाग हज़रत उमर (रज़ि०) ही के शासन-काल में नियमित रूप से स्थापित किया गया और प्रशासन से इसे बिल्कुल अलग रखा गया।

न्यायपालिका का अलग होना था कि तमाम ज़िलों में न्यायालय (अदालतें) स्थापित कर दिए गए, काजियों (जज़) की नियुक्ति कर दी गई। काज़ियों के लिए कार्य-विधि नियत कर दी गई। अतः हज़रत अबू मूसा अशअरी, गवर्नर-कूफ़ा के नाम जो फ़र्मान जारी किया गया था, उसमें साफ़ लिखा था कि:—

1. काजी को न्यायाधीश के रूप में तमाम लोगों से समान व्यवहार करना चाहिए।

2. आमतौर से मुद्दई ही सबूत जुटाएगा।

3. मुद्दआ अलैह अगर किसी किस्म का सबूत या गवाही नहीं रखता, तो उससे कसम ले ली जाएगी।

4. दोनों फ़रीक़ हर हालत में सुलह कर सकते हैं, लेकिन जो बातें क़ानून के ख़िलाफ़ होंगी, उनमें सुलह नहीं हो सकती।

5. काज़ी, खुद अपनी मरज़ी से मुक़दमें का फ़ैसला करने के बाद उस पर पुनर्दृष्टि डाल सकता है।

6. मुक़दमे की एक तारीख़ तय होनी चाहिए।

7. तारीख़ पर अगर मुद्दआ अलैह हाज़िर न हो तो मुक़दमे में

इकतरफ़ा फ़ैसला दे दिया जाएगा।

8. हर मुसलमान गवाही के योग्य है, लेकिन जो सज़ायाफ़्ता हो, या जिसकी झूठी गवाही देनी साबित हो, वह गवाही के क़ाबिल नहीं।

कहा जाता है कि न्यायपालिका को सुदृढ़ और सुचारू रूप से काम करने के लिए चार बातों की आवश्यकता पड़ती है :–

(क) अच्छा और पूर्ण विधान, जिसके अनुसार निर्णय किए जाएँ।

(ख) योग्य और न्यायप्रिय निष्पक्ष अधिकारियों का चयन।

(ग) वे नियम, वे सिद्धान्त जिनके कारण अधिकारी घूसख़ोरी और दूसरे भ्रष्टाचार के शिकार न बनने पाएँ कि उसका प्रभाव निर्णयों पर पड़े।

(घ) और आबादी के अनुपात से क़ाज़ियों (मजिस्ट्रेटों) की नियुक्ति, ताकि न्याय मिलने में किसी को विलम्ब न हो।

हज़रत उमर (रज़ि०) ने इन चारों बातों पर इतना ध्यान दिया कि इससे ज्यादा दिया ही नहीं जा सकता था।

अदालतों की एक बड़ी ज़रूरत समता और बराबरी भी है। अर्थात् न्यायालयों में राजा-प्रजा, अमीर व ग़रीब, सज्जन-दुर्जन, सबको एक नज़र से देखा जाए। हज़रत उमर (रज़ि०) इस बात का इतना ख़याल रखते थे कि उसकी परीक्षा और अनुभव के लिए अनेकों बार स्वयं अदालत में मुक़दमे के फ़रीक़ बनकर गए। एक बार उनमें और उबई इब्न काब में कोई झगड़ा हो गया। उबई ने क़ाज़ी ज़ैद इब्न साबित के यहां मुक़दमा दायर कर दिया। हज़रत उमर (रज़ि०) मुद्दआ अलैह की हैसियत से हाज़िर हुए। ज़ैद ने सम्मान करना चाहा। हज़रत उमर (रज़ि०) ने फ़रमाया, यह

तुम्हारा पहला जुल्म है। यह कह कर उबई के बराबर बैठ गए। उबई के पास कोई सबूत न था और हज़रत उमर (रज़ि०) को दावे से इन्कार था। हज़रत उबई के नियमानुसार हज़रत उमर (रज़ि०) से क़सम लेनी चाहिए थी, लेकिन ज़ैद ने उनके पद का विचार करके उबई से दरख़्वास्त की कि अमीरुल मोमिनीन को क़सम से माफ़ रखो। हज़रत उमर (रज़ि०) को इस हिदायत से भी बड़ी तकलीफ़ पहुंची, हज़रत ज़ैद (रज़ि०) से बोले कि जब तक तुम्हारे नज़दीक जन-साधारण और उमर दोनों बराबर न हों, तुम न्यायाधीश बनने के योग्य नहीं समझे जा सकते।

क़ाज़ियों और उनकी कार्रवाइयों के बारे में हज़रत उमर (रज़ि०) ने जिस प्रकार के नियम व सिद्धांत बनाए थे और उन पर जिस प्रकार सख़्ती से अमल कराया था, उसी का यह नतीजा था कि उनके शासन-काल में, बल्कि बनू उमैया काल तक न्यायालयों में निष्पक्ष और न्यायपूर्ण ढंग से काम होता रहा।

इफ़्ता-विभाग

न्यायपालिका का यह पुराना सिद्धांत है कि क़ानून का न जानना माफ़ी की वजह नहीं बन सकता। यह सिद्धाँत पहले भी था और अब भी है, लेकिन न पहले ऐसा कभी हुआ और न आज हो रहा है, जबकि अब शिक्षा का प्रसार घर-घर हो गया है कि ऐसे उपाय अपनाए जाएँ, जिनसे जन-साधारण भी ज़रूरी बातों से वाक़िफ़ रहे, लेकिन इस्लाम ने इसका विशेष प्रबंध किया था। इफ़्ता विभाग इसी काम के लिए मुख्य था। इसका स्वरूप यह था कि बड़े ही योग्य धर्म शास्त्री (फ़क़ीह) हर जगह मौजूद रहते थे और जो व्यक्ति कोई बात पूछना चाहता था, इनसे पूछ सकता था। उनका कर्त्तव्य था, कि पूरी छान-फटक के साथ उन प्रश्नों का उत्तर दें, जो उनसे पूछे गए हैं। ऐसी स्थिति में, कोई भी व्यक्ति, जब चाहे क़ानून की बातों को

ज़ान सकता था और इसलिए कोई व्यक्ति यह बहाना नहीं कर सकता था कि वह क़ानून नहीं जानता।

हज़रत उमर (रज़ि०) के शासन-काल में जिस पाबन्दी के साथ इस पर अमल हुआ है और इस विभाग ने काम किया है, उनसे पहले के युग में शायद इतना नहीं हो सका था।

इस विभाग की सफलता इसी में है कि इफ़्ता (फ़तवे) की आम इजाज़त न हो बल्कि प्रमुख व योग्य व्यक्ति इसके लिए मनोनीत किए जाएं। ताकि शुद्ध ज्ञान ही लोगों तक पहुँच सके। हज़रत उमर (रज़ि०) ने इस पहलू को सदैव ध्यान में रखा और कुछ प्रमुख व्यक्तियों को छोड़कर फ़तवा देने की आम इजाज़त जन-साधारण को न थी।

पुलिस-विभाग

फ़ौजदारी के तमाम मुक़दमे अदालतों में क़ाज़ियों के यहां देखे-सुने जाते थे, लेकिन आरम्भिक कार्रवाइयाँ पुलिस द्वारा ही अंजाम पाती थीं। पुलिस-विभाग नियमित रूप से क़ायम भी कर दिया गया था और उस समय उसका नाम अहदास था। पुलिस अधिकारी को भी 'साहिबुल अहदास' कहते थे। बहरैन पर हज़रत उमर (रज़ि०) ने क़ुदामः इब्न मज़ऊन और हज़रत अबू हुरैरा को नियुक्त किया तो क़ुदामः को मालगुज़ारी वसूलने का ज़िम्मेदार बनाया और हज़रत अबू हुरैरा को स्पष्ट शब्दों में पुलिस के अधिकार दिए। उस समय पुलिस का काम शान्ति-व्यवस्था बनाए रखने का था ही, उनके कर्त्तव्यों में यह बात भी शामिल थी कि वे देखें कि दुकानदार नाप-तौल में धोखा न दे सकें, कोई व्यक्ति सड़क पर मकान न बना ले, जानवरों पर ज़्यादा बोझ न लादा जाए, शराब ऐलानिया बिकने न पाए आदि।

जेलख़ाने

हज़रत उमर (रज़ि०) की एक ईजाद यह भी है कि उन्होंने जेलख़ाने बनवाए, वरन् इनसे पहले अरब में जेलख़ानों का नामों निशान तक न था और यही कारण था कि सज़ाएँ सख़्त दी जाती थीं। हज़रत उमर (रज़ि०) ने सबसे पहले मक्के में सफ़वान इब्न उमैया का मकान चार हज़ार दिरहम में ख़रीदा और उसको जेलख़ाना बनाया, फिर और ज़िलों में भी जेलख़ाने बनवाए।

सेना-विभाग

इस्लाम से पहले सेनाओं के सिलसिले में कोई विशेष नियम व विधान कहीं नहीं पाया जाता था। इससे सबसे बड़ी कमज़ोरी यह रहती थी कि सेनाओं का केन्द्र से कोई नियमित सम्पर्क नहीं बन पाता था और जब वे चाहतीं विद्रोह कर बैठतीं और स्वतन्त्र राज्य की घोषणा कर देतीं।

हज़रत उमर (रज़ि०) का ध्यान इस ओर भी आकृष्ट हुआ और इस विभाग को इतना नियमित व सुगठित कर दिया कि उस युग के लिए यह एक विचित्र बात थी।

सैनिकों के रजिस्टरों को तैयार करा लिया गया, पूरे देश के लिए एक सेना तैयार कर ली गई। रजिस्टर के अनुसार लड़ने वाले सैनिकों और वालंटियर कोर या रिज़र्व फ़ोर्स को दो भागों में विभाजित कर दिया गया।

ऐसे ही पूरे देश को सैनिक क्षेत्रों में बांट कर हर क्षेत्र के हेड क्वार्टर निर्धारित कर दिए गए। इन हेड क्वार्टरों पर सेनाओं के लिए जो प्रबन्ध किए गए, वे निम्न थे :–

1. सेनाओं के रहने के लिए बैरकें तैयार की गईं।

2. हर जगह बड़े-बड़े अस्तबल तैयार कराए गए, जिनमें चार-चार हज़ार घोड़े हर वक़्त साज़ व सामान के साथ तैयार रहते थे। ये केवल इसलिए तैयार रखे ज़ाते थे कि अचानक ज़रूरत पेश आए तो 32 हज़ार सैनिकों की टुकड़ी तैयार कर ली जाए।

3. सेना से सम्बन्धित हर प्रकार के कागज़ात और रिकार्ड इन्हीं जगहों पर रहता था।

4. रसद के लिए जो अन्न और खाद्य पदार्थ जुटाए गए थे, वे सब इन्हीं जगहों पर रखे जाते थे और यहीं से दूसरी जगहों को भेजे जाते थे।

इन हेड क्वार्टर्स के अलावा हज़रत उमर (रज़ि०) ने बड़े-बड़े शहरों और महत्वपूर्ण स्थानों पर काफ़ी बड़ी संख्या में सैनिक छावनियां स्थापित कीं। इसी तरह सेनाओं की ज़रूरतों का प्रबंध और उनकी तनख़्वाहों पर भी विशेष ध्यान दिया। सेनाओं के सम्बन्ध में कुछ और बातों पर भी विशेष ध्यान दिया जाता था, जो इस प्रकार हैं :—

(क) मौसम की दृष्टि से लड़ाई की दिशाएँ निर्धारित कर दी जाती थीं, जैसे जो ठंडे देश थे वहां गर्मियों और गर्म देशों को जाड़े में सेनाएं भेजी जाती थीं।

(ख) वसन्त ऋतु में सेनाएं उन स्थानों को भेजी जाती थीं, जहाँ की जलवायु बेहतर हो और जहां हरियाली पाई जाती हो।

(ग) बैरकों और छावनियों के निर्माण में सदैव अच्छी जलवायु को ध्यान में रखा जाता था। मकानों को हवा और रोशनी की दृष्टि से भी इस तरह तैयार किया जाता था कि स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव न पड़े।

(घ) सेना को जब कूच करने का आदेश दिया जाता तो साथ ही इसे भी ध्यान में रखा जाता था कि वह जुमा के दिन अपना पड़ाव डाले और पूरे एक दिन पड़ाव डाले रहे, ताकि लोग कुछ आराम कर लें और हथियारों और कपड़ों को दुरुस्त कर लें। साथ ही यह भी ताकीद रहती कि हर दिन उतनी ही मंजिलें तय की जाएं, जिससे कि

थकन का अनुभव कम से कम हो और वहां पड़ाव डाला जाए जहां हर तरह की ज़रूरतें पूरी हो सकें।

(ङ) छुट्टियों का नियम भी बना दिया गया था कि जो सेनाएं दूर के इलाक़ों में पड़ी थीं उनके सैनिकों को साल में कम से कम एक बार, वरन् दो बार छुट्टियाँ दी जाएँ, बल्कि एक मौके पर जब हज़रत उमर (रज़ि०) ने एक औरत को अपने पति की जुदाई में करुण पद पढ़ते सुना तो अधिकारियों को आदेश दे दिया कि कोई चार महीने से अधिक बाहर रहने पर मजबूर न किया जाए।

लेकिन ये तमाम सुविधाएँ उसी समय तक थीं जब तक ज़रूरत का तकाज़ा था, वरन् आराम तलबी, काहिली, और भोगी-विलासी जीवन जीने से बचने के लिए बड़े कड़े नियम बना दिए थे। इसकी बड़ी ताकीद थी कि सेनानी रिकाब के सहारे सवार न हों, नरम कपड़े न पहनें, धूप खाना न छोड़ें, हम्मामों में न नहाएँ।

इस प्रकार हज़रत उमर (रज़ि०) ने अपने विवेक से काम लेकर सेनाओं को नियमित रूप से गठित किया और उस समय तक की सामरिक कला को उन्नति देकर उसे अपनी चरम सीमा पर पहुंचा दिया। उस युग में इस कला का इतना भारी विकास और वैज्ञानिक गठन, सिर्फ़ हज़रत उमर (रज़ि०) की प्रशासनिक सूझ-बूझ का पता देता है।

इस्लाम का प्रचार-प्रसार

सेनाओं और सैनिक कार्रवाइयों से किसी को यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि इस्लाम के प्रचार व प्रसार का जो काम बहुत ही बड़े पैमाने पर हुआ, उसमें तलवार का बड़ा दख़ल था। तलवार के बल पर धर्म-परिवर्तन के ख़िलाफ़ स्वयं क़ुरआन मजीद की यह आयत गवाही दे रही है कि :-

"ला इकराह फ़िद्दीन" (धर्म के मामले में कोई ज़बर्दस्ती नहीं)।

भला हज़रत उमर (रज़ि०) या उनके साथी इसके विरुद्ध कैसे कोई काम कर सकते थे। समझाने-बुझाने के बावजूद जब हज़रत उमर (रज़ि०) का दास स्वयं इस्लाम स्वीकार करने पर तैयार न हुआ तो आपने यही आयत पढ़ी थी।

हां, हज़रत उमर (रज़ि०) के युग में इस पहलू से अवश्य काम हुआ कि इस्लाम के पावन सन्देश को एक-एक व्यक्ति तक पहुंचाने की कोशिश की गई। यहां तक कि हज़रत उमर (रज़ि०) अपनी सेनाओं को भी जब कूच करने का आदेश देते थे, तो ताकीद कर देते थे कि पहले उन लोगों को इस्लामी संदेश पहुंचाया जाए और यह बताया जाए, कि जिसने पैदा किया है, जो स्वामी है, पालनहार है, उसी का भेजा हुआ यह संदेश है कि अपने पूरे जीवन में उसी की भक्ति व आज्ञापालन करो, यही सफलता की कुंजी है और इसी से तुम्हारा स्वामी मरने के बाद तुम्हें शाश्वत सुखों का भागीदार बनाएगा, इसलिए यही मुक्ति-मार्ग है, इसे अपनाओ।

सिद्धांत कितना ही अच्छा हो, अगर वह व्यवहार्य न हो, या उस पर चलकर कुछ लोग आदर्श न प्रस्तुत कर रहे हों, तो वह प्रभावहीन सिद्ध होता है। हज़रत उमर (रज़ि०) का युग इस पहलू से भी आदर्श रहा है कि उन्होंने अपने शासन-काल में मुसलमानों को आदर्श जीवन बिताने पर पूरा बल दिया। बल्कि यों कहना चाहिए कि उस युग के लोगों को देखकर इस्लाम के चलते-फिरते चित्र की याद ताज़ा हो जाती थी। यहां तक कि इस्लामी सेनाएं भी जिस ओर से गुज़र जाती थीं लोगों को ख़ामख़ाही उनको देखने का शौक़ पैदा होता था। इस तरह जब लोगों को उनके देखने और उनसे मिलने-जुलने का अवसर मिलता था तो एक-एक मुसलमान सच्चाई, सादगी, पवित्रता, उत्साह और निष्ठा का चित्र नज़र आ जाता था। ये चीज़ें स्वत: लोगों के मन को खींचती थीं और इस्लाम उनमें घर करता जाता था। सीरिया प्रदेश ही की प्रसिद्ध घटना है कि रूमियों का दूत जार्ज, हज़रत अबू उबैदा और उनके सैनिकों के आचरण से इतना प्रभावित हुआ कि इस्लाम की सत्यता उसके लिए कोई अनजानी चीज़ न रही और तुरन्त इस्लाम स्वीकार कर लिया। शत्ता, जो मिस्री राज्य का एक बड़ा सरदार था, मुसलमानों ही के आचरण से प्रभावित होकर इस्लाम का शैदाई बना था और अन्तत: दो हज़ार आदमियों के साथ मुसलमान हो गया था। यही कारण है कि मुसलमानों के क़दम ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते गए, उनके चरित्र-आचरण के अमिट चिन्ह लोगों के दिलों पर अपनी छाप डालते गए, इस्लाम फैलता गया और लोग मुसलमान होते गए।

प्रचार के दूसरे साधन

इस्लाम-प्रचार के लिए क़ुरआन का जमा करना, उसकी शुद्ध प्रति का निकलवाना, समूचे देश में उसकी शिक्षाओं का चलन आम करना भी काफ़ी महत्वपूर्ण कार्य है। हज़रत उमर (रज़ि०) ने भी

इस ओर विशेष ध्यान दिया। यह बात सभी जानते हैं कि प्यारे नबी (सल्ल०) के समय में कुरआन मजीद को पुस्तक रूप नहीं प्राप्त हुआ था। बिखरे हुए अंश विभिन्न लोगों के पास थे वह भी कुछ हड्डियों पर, कुछ खजूर के पत्तों पर, कुछ पत्थर की तख़्तियों पर। सभी कुरआन के हाफ़िज भी नहीं थे। हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) के शासन-काल में जब मुसैलमा किज़्ज़ाब से लड़ाई हुई, तो सैकड़ों सहाबी शहीद हुए, जिनमें कुरआन के हाफ़िज़ भी बहुत थे। यह बात हज़रत उमर (रज़ि०) के लिए बड़ी चिन्ताजनक थी। आपने कुरआन को एक प्रति में संकलित कर लिए जाने पर हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) को तैयार कर लिया और उन्हीं के शासन-काल में राजकीय प्रति तैयार करा ली गई।

हज़रत उमर (रज़ि०) का काल आते-आते इसकी आवश्यकता और बढ़ गई कि कुरआन की सुरक्षा का विशेष प्रबन्ध किया जाए और ऐसे चोर दरवाज़े बन्द कर दिए जाएँ जिनसे अन्य ईश्वरीय धर्म-ग्रन्थों की तरह उसमें संशोधन-परिवर्तन सम्भव न हो सके। इसी उद्देश्य से हज़रत उमर (रज़ि०) ने सबसे पहले उसकी तालीम पर अधिक ज़ोर दिया और ऐसी व्यवस्था की कि हर वर्ष सैकड़ों और हज़ारों हाफ़िज़ पैदा हो जाएँ। आपने कुरआन का पढ़ना अनिवार्य कर दिया, चुनांचे एक व्यक्ति को, जिसका नाम अबू सुफ़ियान था, कुछ व्यक्तियों के साथ इस पर तैनात किया कि वह कबीलों में घूम-घूम कर हर व्यक्ति की परीक्षा लें और जिसको कुरआन मजीद का कोई भाग याद न हो, उसको सज़ा दें।

हज़रत उमर (रज़ि०) नें कुरआन के साथ हदीस और फ़िक़्ह (धर्मशास्त्र) की शिक्षा पर भी काफ़ी ज़ोर दिया। इसके लिए सभी प्रान्तों और ज़िलों में अध्यापकों का प्रबन्ध किया गया। इन अध्यापकों को बड़ी-बड़ी तनख़्वाहें दी जाती थीं, ताकि वे एकाग्र

होकर पढ़ने-पढ़ाने के काम को अंजाम दे सकें। धर्म-शिक्षा आम हो, इसके लिए मदरसों और स्कूलों के अलावा, हज़रत उमर (रज़ि०) ने हर शहर-कस्बे में इमाम और मुअज़्ज़िन नियुक्त किए और बैतुलमाल से उनकी तनख़्वाहें नियत कीं– इन प्रबंधों से मौलिक शिक्षाओं को बच्चा-बच्चा जान गया। मुसलमानों के अलावा ग़ैर-मुस्लिमों को भी इस्लामी शिक्षाओं का ज्ञान हो गया।

कुछ और प्रशासनिक व्यवस्थाएँ

उपर्युक्त कुछ प्रमुख व्यवस्थाओं के साथ-साथ कुछ और प्रशासनिक कार्रवाइयां हैं, जिनका महत्व बहुत से पहलुओं से बहुत ज़्यादा है, जैसे :–

1. दफ़्तर और कागज़ात के रिकार्ड के लिए सन् और साल की आवश्यकता पड़ती है। हज़रत उमर (रज़ि०) से पहले इन चीज़ों का वजूद था ही कब? कुछ प्रसिद्ध घटनाओं के आधार पर साल जोड़कर बताने का चलन आम था, लेकिन यह हज़रत उमर (रज़ि०) ही थे, जिन्होंने हिजरी सन् का आरम्भ किया।

2. हर काम के अलग-अलग रजिस्टरों के रखने का रिवाज हज़रत उमर (रज़ि०) के समय में ही चला था। इन रजिस्टरों में सही-सही लिखने के लिए माहिर लोगों (एकाउंटेंट्स) को नियुक्त किया गया। यही कारण है कि बैतुलमाल (राजकोष) का हिसाब-किताब बड़ा साफ़-सुथरा रहता था। जब जो चाहे मालूम कर सकता था कि विभिन्न युद्धों में क्या और कितनी रकम जमा हुई, कितनी ख़र्च हुई और अब ख़ज़ाने में क्या है।

3. जन-गणना और उस संबंध के कागज़ात की तैयारी और रिकार्ड भी हज़रत उमर (रज़ि०) ही की देन है।

4. सिक्कों का चलन भी हज़रत उमर (रज़ि०) ही के समय से शुरू हो गया था।

इस्लामी राज्य की ज़िम्मी-प्रजा

हज़रत उमर (रज़ि०) ने ज़िम्मी[1] प्रजा को जो अधिकार दिए, उसका मुकाबला अगर उस समय के और राज्यों से किया जाए तो कोई अनुपात ही नहीं बनता। रूमी व ईरानी साम्राज्य में ज़िम्मियों को 'दास' से अधिक महत्व प्राप्त न था। लेकिन इस्लामी राज्य के ग़ैर-मुस्लिमों को इतने अधिकार मिले हुए थे, मानो समानता के आधार पर समझौता करने वाली दो जातियां हों। उदाहरण में बैतुलमक्दिस के समझौते को लीजिए, जो हज़रत उमर (रज़ि०) की मौजूदगी ही में हुआ था और जिसमें कहा गया था :-

'यह वह अमान (शरण) है, जो अल्लाह के बन्दे अमीरुल मोमिनीन उमर (रज़ि०) ने एलिया के लोगों को दी। यह अमान उनकी जान, माल, गिरजा, सलीब, तंदुरुस्त, बीमार और उनके तमाम धार्मिकों के लिए है, इस प्रकार कि उनके गिरजों में न निवास किया जाएगा, न वे ढाए जायेंगे, न उनको या उनके अहाते को कुछ नुकसान पहुंचाया जाएगा, न उनकी सलीबों और उनके माल में कुछ कमी की जाएगी। धर्म के मामले में उन पर कोई ज़बर्दस्ती न की जाएगी, न उनमें किसी को नुकसान पहुंचाया जाएगा। एलिया में उनके साथ यहूदी न रहने पाएँगे। एलिया वालों का कर्तव्य है कि और नगरों की तरह जिज़िया (सुरक्षा कर) दें और यूनानियों में से जो

1. ज़िम्मी-प्रजा इस्लामी राज्य की उस ग़ैर-मुस्लिम प्रजा को कहते हैं, जिनकी जान और माल की सुरक्षा की ज़िम्मेदारी इस्लामी सरकार लेती है। अपनी सुरक्षा के लिए उन्हें स्वयं युद्ध में भाग लेना नहीं पड़ता। इस सुरक्षा के लिए वे सरकार को एक विशेष कर देते हैं जिसे जिज़या कहा जाता है।

नगर से निकलेगा, उसकी जान और माल को अमान है, जब तक कि वह शरण-स्थल को न पहुंच जाए और जो एलिया ही में रहना चाहे, तो उसे भी अमान है और उसको जिज़िया देना होगा और एलिया वालों में से जो व्यक्ति अपनी ज़ान और माल लेकर यूनानियों के साथ चला जाना चाहे, तो उनको, उनके गिरजों को और सलीबों को अमान है, यहाँ तक कि वे शरण-स्थल को पहुंच जाएँ और जो कुछ इस तहरीर में है, उस पर अल्लाह का, अल्लाह के रसूल का, खलीफ़ों का, मुसलमानों का ज़िम्मा है, बशर्ते कि ये लोग निर्धारित कर देते रहें। इस तहरीर पर गवाह हैं ख़ालिद इब्न वलीद, अम्र इब्न आस, अब्दुर्रहमान इब्न औफ़ और मुआविया इब्न अबी सुफ़ियान और यह सन् 15 हि० में लिखी गई।

इस समझौते से साफ़ मालूम होता है कि हज़रत उमर (रज़ि०) ने ज़िम्मियों को काफ़ी अधिकार दे रखे थे, उनकी सुरक्षा की हर प्रकार की ज़िम्मेदारी थी, उनको अपने धर्म पर चलने की पूरी स्वतन्त्रता दे रखी थी। यूनानी ही मुसलमानों के असल शत्रु थे, फिर भी उन्हें पूरी सुविधाएँ दी गई। और यह केवल काग़ज़ी कार्रवाई ही नहीं थी, बल्कि हज़रत उमर (रज़ि०) ने इसे व्यवहारिक रूप भी दिया।

यह आज से 1350 साल पहले का दौर था, ज़िम्मी प्रजा इस्लामी राज्य से पूरी तरह सन्तुष्ट थी, पर आज ? आज भी अनेक राष्ट्रों ने अपने अल्पसंख्यकों को अनेकों अधिकार दे रखे हैं, पर उनकी हैसियत काग़ज़ी ख़ानापुरी से अधिक नहीं है। क्या आज का युग हज़रत उमर (रज़ि०) के युग का मुक़ाबला कर सकता है?

सबसे बड़ी बात यह है कि जान व माल की सुरक्षा के संदर्भ में हज़रत उमर (रज़ि०) ने किसी मुसलमान और ज़िम्मी में कोई अन्तर नहीं किया। कोई मुसलमान अगर किसी ज़िम्मी को क़त्ल कर डालता था, तो हज़रत उमर (रज़ि०) तुरन्त उसके बदले मुसलमान

को क़त्ल करा देते थे। इमाम शाफ़ई रिवायत करते हैं कि बिक्र इब्न वाईल क़बीले के एक व्यक्ति ने हियरा के एक ईसाई को मार डाला। हज़रत उमर (रज़ि०) ने लिख भेज कि क़ातिल मक़्तूल (मरने वाले) के वारिसों को दे दिया जाए। अतः वह व्यक्ति, मक़्तूल के वारिस के, जिसका नाम हुनैन था, हवाले कर दिया गया और उसने उसको क़त्ल कर डाला।

माल और जायदाद के बारे में उनके अधिकारों की सुरक्षा इससे बढ़कर क्या हो सकती थी कि जितनी ज़मीनें उनके क़ब्ज़े में थीं, उसी हैसियत में बहाल रखी गईं, यहां तक कि मुसलमानों को उन ज़मीनों का ख़रीदना भी नाजायज़ क़रार दे दिया गया।

एक बार एक काश्तकार की फ़सल को सैनिकों से नुकसान पहुंच गया, हज़रत उमर (रज़ि०) ने बैतुलमाल से दस हज़ार दिरहम मुआवज़े में दिलवाए।

ज़िम्मियों से मशविरे लिये जाते

एक बड़ा अधिकार जो जनता को प्राप्त हो सकता है, वह यह है कि राज्य-प्रशासन में उनको भी शरीक किया जाए। हज़रत उमर (रज़ि०) सदैव ऐसे मामलों में जिनका सम्बन्ध ज़िम्मियों से होता था, उनके मत और मशविरे के बिना कोई कदम न उठाते थे। जब इराक़ का बंदोबस्त हो रहा था तो ईरानी सरदारों को मदीना बुलाकर मालगुज़ारी के हालात मालूम किए। मिस्र में जो इन्तिज़ाम किया, उसमें मक़ूक़स से अक्सर राय ली।

ज़िम्मियों पर किसी भी प्रकार की कठोरता हज़रत उमर (रज़ि०) को प्रिय न थी। 'किताबुल ख़िराज' में उल्लिखित है कि हज़रत उमर (रज़ि०) जब सीरिया से वापस आ रहे थे, तो कुछ आदमियों को देखा कि धूप में खड़े हैं और उनके सिर पर तेल डाला जा रहा है। लोगों से पूछा कि बात क्या है? मालूम हुआ कि इन

लोग़ों ने जिज़िया नहीं अदा किया है, इसलिए उनको सजा दी जाती है। हज़रत उमर (रज़ि०) ने पूछा कि आख़िर उनकी विवशता क्या है? लोगों ने कहा,'ग़रीबी'। फ़रमाया, छोड दो और उनको कष्ट न दो। मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से सुना है, 'लोगों को कष्ट न दो।' जो लोग दुनिया में लोगों को अज़ाब पहुंचाते हैं, अल्लाह क़ियामत में उनको अज़ाब पहुंचएगा।' हज़रत अबू उबैदा को सीरिया की विजय के बाद जो आदेश भेजे, उसमें ये शब्द थे:–

मुसलमानों को मना करना कि ज़िम्मियों पर ज़ुल्म न करने पाएं, न उनको नुक़सान पहुंचाने पाएं न उनका माल बे-वजह खाने पाएं और जितनी शर्तें तुमनें उनसे की हैं, सब पूरी करो।'

धार्मिक स्वतंत्रता

धार्मिक मामलों में ज़िम्मियों को पूरी स्वतंत्रता प्राप्त थी। वे हर प्रकार की धार्मिक रस्में पूरी करते थे, खुले तौर पर नाक़ूस (शंख) बजाते थे, सलीब निकालते थे, हर क़िस्म के मेले-ठेले करते थे। उनके धर्म-गुरुओं को जो धार्मिक अधिकार प्राप्त थे, बिल्कुल बाक़ी रखे गए थे। अतः हुज़ैफ़ा इब्न यमान ने माह दीनार वालों को जो तहरीर लिखी थी, उसमें ये शब्द स्पष्ट रूप से लिखे गए थे:–

'उनका धर्म न बदला जाएगा और उनके धार्मिक मामलों में कोई हस्तक्षेप न किया जाएगा' लगभग यही शब्द तमाम दूसरे समझौतों में पाए जाते हैं, जो ग़ैर-मुस्लिमों से किए जाते थे।

अधिक सुविधाएं

ज़िम्मियों से जिज़िया और उश्र के अलावा कोई और कर न लिया जाता था, जबकि मुसलमानों से ज़कात वसूल की जाती थी, जिसकी मात्रा उपर्युक्त दोनों करों से अधिक थी। ज़कात के अलावा मुसलमानों से उश्र भी वसूल किया जाता था।

इस्लामी राज्य की ओर से मुसलमान अपंगों, बूढ़ों को वज़ीफ़ा

मिला करता था, लेकिन ज़िम्मियों को मुसलमानों से भी अधिक सुविधाएं प्राप्त थीं। हज़रत ख़ालिद इब्न वलीद (रज़ि०) ने हियरा की विजय के अवसर पर जो समझौता-पत्र तैयार किया था, उसके शब्द इस प्रकार थे :—

'और मैंने उनको यह अधिकार दिया कि अगर कोई बूढ़ा व्यक्ति काम करने से विवश हो जाए, या उस पर कोई विपदा आ जाए, या पहले धनवान था, फिर निर्धन हो गया, उसके धर्म के लोग उसे दान देने लगें, तो उसका जिज़िया ख़त्म कर दिया जाएगा और उसको और उसकी औलाद को मुसलमानों के बैतुलमाल से पूरा ख़र्च दिया जाएगा, जब तक वह इस्लामी राज्य में रहे। लेकिन अगर वह विदेश चला जाए, तो राज्य उसके ख़र्चे का ज़िम्मेदार न होगा।'

हज़रत उमर (रज़ि०) के शासन-काल की घटना है कि एक बार हज़रत उमर (रज़ि०) ने एक बूढ़े व्यक्ति को भीख मांगते देखा, पूछा, भीख क्यों माँगता है? कहा, मुझ पर जिज़िया लगाया गया है और मुझ में उसके अदा करने की शक्ति नहीं है। हज़रत उमर (रज़ि०) उसको साथ घर पर ले आए और कुछ नक़्द देकर बैतुलमाल के अधिकारी से कहला भेजा कि इस प्रकार के विवश लोगों का वज़ीफ़ा बांध दो।

ज़िम्मियों को अधिक से अधिक सुविधाओं के देने की भावना इस हद तक आगे बढ़ी हुई थी कि उनके षडयन्त्र करने या विद्रोह भड़काने सरीखे अपराध के पाए जाने के बाद भी उनकी दी गई सुविधाओं को ध्यान में रखा जाता।

सीरिया की अन्तिम सीमा पर एक नगर था, जिसका नाम अरबसूस था और जिसकी दूसरी सीमा एशिया माइनर से मिली हुई थी। सीरिया पर जब विजय मिल गई तो इस नगर पर भी विजय प्राप्त कर ली गई और समझौता हो गया, लेकिन यहां के लोग षडयन्त्र में लगे रहे और रूमियों को इधर की ख़बरें बराबर पहुंचाते

रहे। वहां के अधिकारी हज़रत उमर इब्न साद ने हज़रत उमर (रज़ि०) को सूचना दी। हज़रत उमर (रज़ि०) ने उनके उत्तर में लिखा कि जितनी भी उनकी जायदाद, ज़मीन, मवेशी और सामान हैं, सब गिन कर एक-एक की दो गुनी कीमत दे दो और उनसे कह दो कि कहीं और चले जाएँ। अगर इस पर भी तैयार न हों तो उन को एक साल की मुहलत दो और उसके बाद देश निकाला दे दो।

इस्लामी राज्य के ज़िम्मी इन सुविधाओं से किस हद तक सन्तुष्ट थे, इसका बड़ा प्रमाण यह है कि ज़िम्मियों ने हर मौके पर स्वयं अपने धर्मानुयायियों के मुकाबले में मुसलमानों का साथ दिया। मुसलमानों से उनके लगाव का हाल यह था कि यरमूक की लड़ाई के समय जब मुसलमान हम्स नगर से निकले, तो यहूदियों ने तौरात हाथ में लेकर कहा कि जब तक हम ज़िन्दा हैं, कभी रूमी यहां न आने पाएंगे।' और ईसाइयों ने बड़ी हसरत से कहा, 'खुदा की कसम! तुम रूमियों के मुकाबले में हमें कहीं ज़्यादा प्रिय हो।'

न्यायप्रिय शासक

राजनीति और शांति-व्यवस्था तथा न्याय की दृष्टि से हज़रत उमर (रज़ि०) का नाम कियामत तक चमकते सूरज की तरह रौशन रहेगा। सोचिए तो, कितना बड़ा राज्य है, भांति-भांति के लोग हैं, अनेक धर्मावलम्बी हैं, विभिन्न जातियां हैं, लेकिन कहीं कोई बेचैनी नहीं, अशान्ति नहीं, हर जगह शान्ति है, व्यवस्था है और न्याय है।

अरबसूस ने बार-बार विद्रोह करना चाहा, तंग आकर उन्हें देश निकाला दे दिया गया, फिर भी पूरी मानवता के साथ और न्यायपूर्ण व्यवहार दिखाते हुए। न उनकी जायदाद जब्त की गई, न माल-असबाब। जो ले जा सके, ले गए, शेष की सूची तैयार करा कर एक-एक की दोगुनी कीमत अदा कर दी गई। इसी तरह नजरान के ईसाइयों को, कोई और रास्ता न पाकर जब अरब से निकल जाने का आदेश दिया गया, तो इस रियायत के साथ निकाला गया कि उनकी जायदाद की एक-एक पाई चुका दी जाए, साथ ही गवर्नरों को हिदायत कर दी गई कि जब उनका गुज़र उनके इलाके से हो, तो उन्हें हर प्रकार की सुविधाएँ दी जाएँ और जब ये कहीं स्थायी रूप से वास करें तो चौबीस महीने तक इनसे कोई जिज़िया या टैक्स न लिया जाए।

हज़रत उमर (रज़ि०) का शासन-काल निस्संदेह लोकतंत्र का आदर्श काल था, वह अपनी नीति, निष्ठा, न्याय, विवेक के कारण लोगों के दिलों पर शासन करते थे और किसी को साहस न हो पाता था कि उनके किसी निर्णय का कोई विरोध कर सके। सीरिया के

सफ़र में जब उन्होंने खुली सभा में हज़रत ख़ालिद को सेनापतित्व से पदच्युत कर दिया और अपनी नीति की सफ़ाई पेश कर दी तो एक व्यक्ति ने वहीं उठकर कहा :–

'हे उमर! ख़ुदा की क़सम, आपने इन्साफ़ नहीं किया, आपने तो अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के अधिकारी को पदच्युत कर दिया, आपने अल्लाह के रसूल की खींची हुई तलवार को म्यान में डाल दीं, आपने नातेदारी भंग कर दी, आप अपने चचेरे भाई से जले।'

हज़रत उमर (रज़ि०) ने यह सब सुनकर केवल इतना कहा कि 'लगता हैं तुम को अपने भाई की हिमायत में गुस्सा आ गया है।'

ऐसी स्थिति में भी आपके रोब का ह्मल यह था कि हज़रत ख़ालिद को, ठीक उस समय, जबकि तमाम इराक़ व सीरिया के क्षेत्रों में लोग उनके शौर्य-पराक्रम के गुणगान किया करते थे, पदच्युत किया और किसी को साहस न हुआ कि कोई प्रतिक्रिया दिखा सके, यहाँ तक कि किसी प्रकार का कोई विचार भी मन में ला सके। अमीर मुआविया और अम्र इब्नुलआस (रजि०) की शानो शौकत खुले दिन की तरह सभी जानते थे, लेकिन हज़रत उमर (रज़ि०) के नाम से वे कांप-कांप जाते थे। हज़रत अम्र इब्न आस (रज़ि०) के बेटे अब्दुल्लाह (रज़ि०) ने एक व्यक्ति को बे-मतलब मारा था। हज़रत उमर (रज़ि०) ने अम्र इब्न आस के सामने उनको उसी पिटे हुए व्यक्ति से कोड़े लगवाए। हज़रत साद इब्न अबी वक्क़ास, ईरान के विजेता को मामूली शिकायत पर जवाबदेही में तलब किया, तो उनको तत्काल हाज़िर होना पड़ा।

सब समान

उनके शासन की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि मानव-मानव में कोई भेद-भाव नहीं किया जाता था, न्याय की दृष्टि से सभी बराबर थें, किसी को कोई प्रमुखता प्राप्त न थी। सीरिया का

प्रसिद्ध सरदार जिबिल्ला इब्नुल अलीम ग़स्सानी मुसलमान हो गया था। संयोग कि एक दिन वह काबा के तवाफ़ (परिक्रमा) में व्यस्त था। उसकी चादर के एक कोने पर किसी मुसलमान का क़दम पड़ गया। मारे क्रोध के उसका चेहरा सुर्ख़ हो गया। खींच कर इस ज़ोर का थप्पड़ मारा कि वह घबरा गया लेकिन तत्काल ही उसने पलट कर ज़ोर का थप्पड़ मार दिया। जिबिल्ला का गुस्सा और भड़क उठा, हज़रत उमर (रज़ि०) के पास भाग गया। हज़रत उमर (रज़ि०) ने उसकी शिकायत सुनकर कहा :—

'तुमने जो कुछ किया, उसकी सज़ा पाई।'

वह यह उत्तर पाकर चकित रह गया, बोला, 'हम इतने ऊँचे रुत्बे के लोग हैं कि कोई व्यक्ति हमारे साथ गुस्ताख़ी से पेश आए तो उसकी हत्या कर दी जाती है।'

'हां, अज्ञान-काल में ऐसा ही था, लेकिन इस्लाम इस मतभेद को सहन नहीं कर सकता।' हजरत उमर ने जवाब दिया।

'वह झल्ला कर बोला, 'अगर इस्लाम ऐसा धर्म है, जिसमें कुलीनों और नीच परिवारों में कोई अन्तर नहीं, तो मैं ऐसे इस्लाम से बाज़ आया' फिर वह वापस कुस्तुनतुनिया चला गया, लेकिन हज़रत उमर (रज़ि०) ने उसके लिए इस्लामी न्याय में कोई परिवर्तन करना पसन्द न किया।

एक बार मदीना में गवर्नरों की कान्फ्रेन्स थी। अमीरुलमोमिनीन ने हुक्म दिया कि अगर किसी व्यक्ति को किसी गवर्नर के ख़िलाफ़ कुछ कहना हो, तो निःसंकोच भरी सभा में शिकायत करे। इतने में एक आदमी ने उठकर कहा, कि फ़्लां गवर्नर ने बे-वजह मुझको सौ दुर्रे मारे हैं। हज़रत उमर (रज़ि०) ने फ़रमाया, 'उठ, अपना बदला ले।'

हज़रत अम्र इब्ने आस (रज़ि०) ने कहा, 'अमीरुलमोमिनीन!

इस तरीके से तो तमाम गवर्नरों का मान जाता रहेगा।' हज़रत उमर (रज़ि०) ने फ़रमाया, फिर भी ऐसा ज़रूर होगा। फिर उस व्यक्ति ने कहा कि 'अपना काम कर।' आख़िर हज़रत अम्र इब्ने आस ने उस व्यक्ति को इस बात पर राज़ी किया कि वह दो सौ ले ले और अपने दावे से बाज़ आ जाए।

यह हज़रत उमर (रज़ि०) का न्याय और समता का भाव ही था कि हज़रत अम्र इब्ने आस (रज़ि०) ने मिस्र की जामा मस्जिद में मिम्बर (आसन) बनाया तो लिख भेजा कि, 'क्या तुम यह पसन्द करते हो कि और मुसलमान नीचे बैठे हों औ तुम ऊपर बैठो?'

एक बार हज़रत उबई इब्न काब से किसी मामले में मतभेद हो गया। हज़रत ज़ैद इब्न साबित के यहाँ मुक़दमा पेश हुआ। हज़रत उमर (रज़ि०) जब हाज़िर हुए तो उन्होंने सम्मान में जगह ख़ाली कर दी। हज़रत उमर (रज़ि०) तुरन्त बोले, 'यह पहला अन्याय है, जो तुमने इस मुक़दमे में किया।' यह कह कर अपने फ़रीक़ के बराबर बैठ गए।

हज़रत उमर (रज़ि०) का यह नियम था कि हर दिन सुबह के वक़्त वे लोगों की शिकायतें सुना करते थे। यह इसलिए कि कुछ लोग दूसरों के सामने आपनी शिकायतें पेश नहीं कर सकते। हरेक से अकेले में मुलाक़ात करते और जिस क्रम से लोग आते, उसी क्रम से उनसे मुलाक़ात की जाती। एक दिन अरब क़बीलों के कुछ प्रतितिष्ठत जन कुछ कहने के उद्देश्य से हाज़िर हुए। उनसे पहले कुछ गुलाम भी इसी उद्देश्य से हाज़िर हुए थें। अमीरुलमोमिनीन ने उसी क्रम से गुलामों को पहले मुलाक़ात का मौक़ा दिया। प्रतिष्ठित जनों को शिकायत हुई कि गुलामों पर उनको प्रमुखता दी गई है। मगर आपने कहा, 'इस्लाम की दृष्टि में दास और स्वामी सब बराबर हैं, इसलिए कोई अन्तर नहीं किया जा सकता।' वे कहा करते—

'स्वामी और दास में अन्तर करना मानवता में बिगाड़ पैदा करना है और यही एक बुरी चीज़ है, जिसको मिटाने के लिए प्यारे नबी (सल्ल०) भेजे गए थे।

भाई-भतीजावाद के ख़िलाफ़

जहां हज़रत उमर (रज़ि०) की नीति सबको समान दृष्टि और निष्पक्ष भाव से देखने की थी, वहीं आप भाई-भतीजावाद के भी बहुत ख़िलाफ़ थे और कोई एक काम भी ऐसा करना पसन्द नहीं करते थे, जिससे भाई-भतीजावाद का ज़रा-सा भी संदेह हो सके। आप ने आदेश दे रखा था कि आपके क़बीले के लोगों को कभी कोई पदाधिकारी न बनाया जाए। अगर उनमें से कोई सरकारी नौकरी करना भी चाहे तो उसको अरब से बाहर जाना होगा। इसके अलावा गवर्नरों की हमेशा तब्दीलियां करते रहते, प्रभावपूर्ण व्यक्तियों को अरब के बाहर न जाने देते। एक बार हज़रत अब्दुर्रहमान इब्ने औफ़ ने इसका कारण पूछा,तो फ़रमाया, इसका उत्तर न देना ही बेहतर है।

एक बार युद्ध में प्राप्त शत्रु का कुछ माल आया, आपकी सुपुत्री और प्यारे रसूल (सल्ल०) की धर्म-पत्नी हज़रत हफ़्सा को ख़बर हुई। वह अमीरुलमोमिनीन हजरत उमर (रज़ि०) के पास आईं और कहा, अमीरुलमोमिनीन! इसमें से मेरा हक़ मुझे दे दीजिए, क्योंकि मैं ज़विल क़ुर्बा (करीबी रिश्तेदार) हूं। आपने कहा, 'बेशक तुम मेरे हिस्से में से ले सकती हो, मगर युद्ध में प्राप्त शत्रु के माल में से ज़विल क़ुर्बा (रिश्तेदार-नातेदार को देने) का प्रश्न पैदा नहीं होता। आपने अपनी बेटी को समझा-बुझा दिया और वह बेचारी परेशान होकर चली गईं।

सीरिया की विजय के बाद क़ैसरे रूम (रूमी सम्राट) से मैत्रीपूर्ण

संबंध स्थापित हो गए थे और पत्र-व्यवहार रहने लगा था। एक बार उम्मेकुलसूम (हज़रत उमर (रज़ि०) की पत्नी) ने साम्राज्ञी को इत्र की कुछ शीशियां भेजीं। उसने इसके उत्तर में शीशियों को जवाहरात से भरकर भेजा। हज़रत उमर (रज़ि०) को यह हाल मालूम हुआ तो फ़रमाया, यद्यपि इत्र तुम्हारा था, लेकिन जो दूत इन्हें लेकर गया था, वह सरकारी था और उसका ख़र्च आम आमदनी में से अदा किया गया। तात्पर्य यह कि वे जवाहरात लेकर बैतुलमाल में दाख़िल कर दिए गए और उनको कुछ मुआवज़ा दे दिया गया।

बैतुलमाल (राजकोष) से कुछ लेने-देने में हज़रत उमर (रज़ि०) अत्यधिक सावधानी दिखाते थे। एक बार बीमार पड़े, लोगों ने इलाज में शहद तजवीज़ किया और शहद सरकारी ख़ज़ाने में मौजूद था। मस्जिदे नबवी में जाकर लोगों से कहा कि अगर आप इजाज़त दें तो बैतुलमाल से थोड़ा-सा शहद ले लूं और जब इजाज़त मिल गई तभी आपने शहद इस्तेमाल किया। इस पूरी कार्रवाई से जहां आपका उद्देश्य इजाज़त हासिल करना था वहीं यह बताना भी था कि सरकारी ख़ज़ाने पर वक़्त के ख़लीफ़ा को मनमानी करने का कुछ भी अधिकार नहीं।

जनता की सुख-सुविधा पर विशेष ध्यान

हज़रत उमर (रज़ि०) ने अपने शासन-काल में इसका विशेष प्रबन्ध किया था कि राज्य का कोई भी व्यक्ति भुखमरी का शिकार न हो। सार्वजनिक आदेश था और उसका सदैव पालन भी होता रहा कि देश में जितने भी अपंग, कमज़ोर और बूढ़े हों, सबको सरकारी ख़ज़ाने से पेन्शन दी जाए। 'जनता सुखी रहे' इसके लिए आपने अधिकांश नगरों में मेहमानख़ाने बनवा रखे थे, जहाँ मुसाफ़िरों को सरकार की ओर से खाना मिला करता था। मदीना के मेहमानख़ाने में तो आप प्रायः स्वयं जाकर अपनी निगरानी में खाना खिलवाते।

लावारिस बच्चों की देख-भाल और खान-पान का प्रबन्ध भी सरकार की ओर से होता था। यतीमों का पालन-पोषण और निगरानी भी सरकार के कर्त्तव्यों में से एक था।

सन् 18 हि० में जब अरब में अकाल पड़ा, तो आपने सरकारी तौर पर जो प्रबन्ध किया, उससे आपकी कर्त्तव्यपरायणता और जनता की सुख-सुविधा पर दिए जा रहे विशेष ध्यान को समझा जा सकता है। सबसे पहला काम आपने यह किया कि अकाल का मुक़ाबला करने के लिए सरकारी ख़ज़ाने का मुंह खोल दिया, फिर सभी राज्याधिकारियों को आदेश दिया कि हर ओर से अरब प्रांत को अन्न की सप्लाई तेज़ी के साथ की जाए। फलतः हज़रत अबू उबैदा (रज़ि०) ने चार हज़ार ऊंट, अनाजों से लदे हुए भेजे। हज़रत अम्र इब्नुल आस (रज़ि०) ने लाल सागर के रास्ते से 20 जहाज़ ग़ल्ले से लदे हुए भेजे। हज़रत उमर (रज़ि०) इन जहाजों के निरीक्षण के लिए स्वयं बन्दरगाह तक गए, जिसका नाम जार था, जो मदीना से तीन मंज़िल दूर है। अन्न के अलावा मांस की सप्लाई भी सरकारी स्तर पर बराबर होती रही। वह हर समय इस कोशिश में रहते कि जनता को कोई कष्ट न होने पाए। रातों को सफ़र करते, मुसाफ़िरों से हालात पूछते, शिष्टमंडल आते और निःसंकोच भाव से वे अपनी शिकायतें रखते, उन्हें दूर करने की तुरन्त कोशिश करते, फिर भी हज़रत उमर (रज़ि०) को इन कोशिशों से तसल्ली न होती और बेचैन रहते कि शायद लोगों के असली हालात उनके कान तक नहीं पहुंचने पा रहे हैं।

इसी बात को दृष्टि में रखते हुए आपने फ़ैसला किया कि समूचे देश का दौरा करें और लोगों के हालात सुनकर उनकी परेशानियां दूर करने की कोशिश करें, लेकिन मौत ने मुहलत न दी, फिर भी सीरिया प्रदेश का दौरा आपने किया। एक ज़िले में गए, लोगों की शिकायतें सुनीं और उन्हें दूर करने की क़ोशिश की।

वापसी के समय रास्ते में एक ख़ेमा देखा। इजाज़त लेकर ख़ेमे के अन्दर गए। एक बुढ़िया औरत दीख पड़ी पूछा, 'उमर का कुछ हाल मालूम है?'

'हां, सीरिया से चल चुके हैं, लेकिन ख़ुदा उसे ग़ारत करे, आज तक मुझको उसके यहां से एक दाना तक नहीं मिला है।' बुढ़िया ने झुंझलाकर कहा।

'लेकिन इतनी दूर का हाल उमर को कैसे मालूम हो सकता है?' उमर ने पूछा।

'जब उसे जनता का हाल मालूम नहीं तो ख़लीफ़ा क्यों बन बैठा है?' बुढ़िया ने खीज कर उत्तर दिया।

इस बात से हज़रत उमर (रज़ि०) इतने प्रभावित हुए कि रोते-रोते उनकी हिचकी बंध गई। फ़िर उसका वज़ीफ़ा तय कर दिया गया।

एक बार काफ़िला मदीना में आया और शहर के बाहर उतरा। उसकी देख-भाल और हिफ़ाज़त के लिए ख़ुद तशरीफ़ ले गए। सुनते क्या हैं कि एक ख़ेमे से बच्चे के रोने की आवाज़ आ रही है। मां को जाकर समझाया कि बच्चे को रुलाओ नहीं, बहलाओ। थोड़ी देर बाद फिर उधर से गुज़रे तो बच्चा अब भी रो रहा था। क्रोध आ गया, बोले, 'तू बड़ी निर्दयी मां है, आख़िर बच्चे को चुप क्यों नहीं कराती।'

'तुम को सच्ची बात तो मालूम नहीं, ख़ामख़ाही मुझे आंखें दिखा रहे हो। बात यह है कि उमर (रज़ि०) ने आदेश निकाला है कि बच्चे जब तक दूध न छोड़ें, बैतुलमाल से उनका वज़ीफ़ा न मुकर्रर किया जाए। मैं इसी उद्देश्य से इसका दूध छुड़ा रही हूं और यह है कि रोए जा रहा है।' औरत ने समझा कर कहा।

यह सुन कर हज़रत उमर (रज़ि०) अवाक् रह गए। सोचने

लगे, 'हाय उमर ने इस तरह तो न जाने कितने बच्चों का खून किया होगा?' सोचते-सोचते दिल भर आया, आँखें भीग गईं, अश्रु-धारा बह निकली, वापस हुए तो उसी वक़्त ऐलान करा दिया कि बच्चे जिस दिन से पैदा हों, उसी दिन से उनका वज़ीफ़ा बांध दिया जाए।

सूखे के समय में आप रात को मदीना की पास-पड़ोस की आबादियों तक जा निकलते। एक रात मदीना से तीन मील के फ़ासले पर आपने देखा कि एक औरत कुछ पका रही है और दो-तीन बच्चे रो रहे हैं। पास जाकर वास्तविकता का पता लगाया, तो मालूम हुआ कि कई वक़्त से बच्चों को खाना नहीं मिला है। उनके बहलाने के लिए ख़ाली हांडी में पानी डाल कर चढ़ा दिया गया है। हज़रत उमर (रज़ि०) उसी समय उठे। मदीना आकर बैतुलमाल से आटा, गोश्त, घी और खजूरें लीं और अपने दास असलम से कहा, मेरी पीठ पर रख दो। असलम ने कहा, मैं लिए चलता हूं। फ़रमाया, हां, लेकिन क़यामत में मेरा बोझ तुम नहीं उठाओगे। तात्पर्य यह कि सब चीज़ें खुद लाद कर ले आए और औरत के आगे रख दीं। उसने आटा गूंधा, हांडी चढ़ा दी। हज़रत उमर (रज़ि०) खुद चूल्हा फूंके जाते थे। खाना तैयार हुआ तो बच्चों ने खूब पेट भर कर खाना खाया और उछलने-कूदने लगे। हज़रत उमर (रज़ि०) देखते थे और प्रसन्न होते थे। औरत ने कहा, खुदा तुमको अच्छा बदला दे, सच यह हैं कि अमीरुलमोमिनीन (ख़लीफ़ा) होने योग्य तुम हो, न कि उमर (रज़ि०)।

एक बार रात को हज़रत उमर (रज़ि०) गश्त लगा रहे थे। एक बद्दू ख़ेमे से बाहर ज़मीन पर बैठा हुआ था। पास जाकर बैठ गए और इधर-उधर की बातें शुरू कर दीं। अचानक ख़ेमे से रोने की आवाज़ आई। हज़रत उमर (रज़ि०) ने पूछा, 'कौन रो रहा है?' उसने बताया, पत्नी है, जिसे प्रसव-पीड़ा हो रही है। हज़रत उमर (रज़ि०) घर वापस आ गए और हज़रत उम्मे कुलसूम (पत्नी) को

साथ ले लिया। बद्दू से इजाज़त लेकर उम्मे कुलसूम को ख़ेमे में भेज दिया। थोड़ी देर बाद बच्चा पैदा हुआ। उम्मे कुलसूम ने हज़रत उमर (रज़ि०) को पुकारा, अमीरुलमोमिनीन अपने दोस्त को मुबारक बाद दीजिए।' अमीरुलमोमिनीन का शब्द सुनकर बद्दू चौंक पड़ा और आदरपूर्वक बैठ गया। हज़रत उमर (रज़ि०) ने फ़रमाया कि, 'नहीं कुछ ख़याल न करो, कल मेरे पास आना, मैं इस बच्चे का वज़ीफ़ा तय कर दूंगा।'

अब्दुर्रहमान इब्न औफ़ का बयान है कि एक बार हज़रत उमर (रज़ि०) रात को मेरे मकान पर आए। मैंने कहा, आपने क्यों कष्ट किया, मुझे बुला लिया होता। फ़रमाया कि अभी मुझे मालूम हुआ कि शहर से बाहर एक क़ाफ़िला उतरा है, लोग थके-मांदे होंगे, आओ हम तुम चलकर पहरा दें। अतः दोनों गए और रात भर पहरा देते रहे।

जिस वर्ष अरब में अकाल पड़ा, उनकी विचित्र स्थिति हो गई थी। जब तक अकाल रहा, मांस घी, मछली, तात्पर्य यह कि कोई स्वादिष्ट वस्तु न खाई। बहुत गिड़गिड़ा-गिड़गिड़ा कर दुआएं मांगते थे कि ऐ ख़ुदा! मुहम्मद (सल्ल०) की उम्मत (अनुयायियों) को मेरे आमाल की शामत से तबाह न करना। असलम, उनके दास का बयान है कि 'अकाल के समय में हज़रत उमर (रज़ि०) को जो चिन्ता रहती थी, उससे अन्दाज़ा किया जा सकता था कि अगर अकाल दूर न हुआ तो वह इस ग़म में तबाह हो जाएंगे। अकाल ही के दिनों में एक बद्दू उनके पास आया और उसने निम्न पद पढ़े :—

'हे उमर (रज़ि०)! मज़ा अगर है, तो जन्नत का मज़ा है। मेरी लड़कियों को और उनकी मां को कपड़े पहना। ख़ुदा की क़सम! तुझ को यह करना होगा।'

'और मैं तुम्हारी बात न पूरी कर सकूं तो क्या होगा?

'तुझ से क़यामत में मेरे बारे में प्रश्न होगा और तू हक्का-बक्का रह जाएगा। फिर या दोजख़ की ओर या बहिश्त की ओर जाना होगा।'

हज़रत उमर (रज़ि०) इस पर इतना रोए कि दाढ़ी तर हो गई। फिर दास से कहा कि मेरा यह कुर्ता उसको दे दो, इस वक़्त उसके सिवा और कोई चीज़ मेरे पास नहीं।

एक बार रात को गश्त कर रहे थे। एक औरत अपने कोठे पर बैठी ये पद पढ़ रही थी :—

'रात काली है और लम्बी होती जा रही है और मेरे पहलू में शौहर नहीं, जिससे रति-क्रीड़ा करूं।'

उस औरत का शौहर जिहाद पर गया था और वह उसकी जुदाई में यह दर्द भरे पद पढ़ रही थी। हज़रत उमर (रज़ि०) को बड़ा दुख हुआ कि मैंने अरबी औरतों पर बड़ा अत्याचार किया। हज़रत हफ़्सा (रज़ि०) के पास आए और पूछा कि औरत मर्द के बिना कितने दिन तक रह सकती है। उन्होंने कहा, 'चार महीने'। सुबह हुई तो हर जगह हुक्म भेज दिया कि कोई सिपाही चार महीने से ज़्यादा बाहर न रहने पाए।

आदर्श चरित्र

एक बार प्यारे नबी हज़रत (सल्ल०) ने फ़रमाया, मैंने एक सपना देखा है कि अबूबक्र (रज़ि०), उमर (रज़ि०) और मैं एक कुएं पर मौजूद थे। पहले उस कुएं से मैंने बहुत-सा पानी निकाला, फिर अबूबक्र (रज़ि०) ने। मगर उन्हें पानी निकालने में बड़ी कठिनाई हुई, लेकिन उमर (रज़ि०) ने उसी कुएं से इतना पानी निकाला कि पूरा जंगल पानी से भर उठा।

यह थी हज़रत उमर (रज़ि०) के बारे में प्यारे नबी (सल्ल०) की भविष्यवाणी, जो बाद में साकार हुई। हज़रत उमर (रज़ि०) एक ऐसा व्यापक व्यक्तित्व रखते थे कि, वह एक ही समय में योद्धा भी थे, प्रशासक भी, हाकिम भी थे, काज़ी भी, सामाजिक जीवन तो जैसा कुछ था, था ही, निजी जीवन भी एक आदर्श जीवन था—आदर्श चरित्र, आदर्श आचरण।

हज़रत उमर (रज़ि०) उच्च श्रेणी के वक्ता भी थे, भाषण-कला में प्रवीण। शब्दों का चयन-गठन सुन्दर, आवाज़ ज़ोरदार और रोबदार, इसीलिए तो कुरैश ने उन्हें दूत पद पर आसीन कर रखा था। आपकी कलम में भी काफ़ी ज़ोर था और जब लेखनी चलती तो भाव धारा-प्रवाह व्यक्त होते चलते। शब्दों का गठन, सशक्त भावाभिव्यक्ति और अलंकृत भाषा, उनके लेखों की प्रमुख विशेषता थी। उन्होंने गवर्नरों को जो पत्र लिखे हैं, उन्हें पढ़कर इसीलिए एक व्यक्ति चकित रह जाता है।

कविता लिखने-पढ़ने के बारे में यद्यपि यही मशहूर है कि वे

'कवि' नहीं थे, लेकिन इस पर सभी सहमत हैं कि उनके समय में उन से बेहतर कविताओं का पारखी कोई और न था। उन्हें अरब के अधिकांश प्रसिद्ध कवियों की कविताएं याद थीं और हर कवि के बारे में साहित्यिक दृष्टि से उनकी अपनी रायें भी थीं। अच्छे पद सुनते थे, तो बार-बार मज़े ले-लेकर पढ़ते और दुहराते जाते थे।

हज़रत उमर (रज़ि०) वंशावलियों को याद रखने में दक्ष थे। लिखना-पढ़ना तो जानते ही थे। मदीना पहुंच कर इब्रानी भाषा भी सीख ली थी। उन्होंने यह भाषा मदीना में यहूदियों से सीखी थी। एक बार वे प्यारे नबी (सल्ल०) को तौरात से कुछ पढ़ कर सुना रहे थे। हुज़ूर को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि हज़रत उमर (रज़ि०) इब्रानी भाषा में कितने दक्ष हैं कि बिना किसी अवरोध के तौरात पढ़ सकते हैं। वे प्रायः यहूदियों के मुहल्ले में आया-जाया करते थे और उनका तौरात-पाठ सुनते थे। यहूदी कहा करते थे कि हज़रत उमर (रज़ि०) हमको सब से ज़्यादा अज़ीज़ हैं, क्योंकि वे हमारे दिलों से बहुत करीब हैं।

हज़रत उमर (रज़ि०) के नीतिपरक कथन तो आज कहावतें बन गयी हैं जैसे—

'जो व्यक्ति अपना रहस्य छिपाता है, वह अपना अधिकार अपने हाथ में रखता है।'

'जिससे तुम को घृणा हो, उससे डरते रहो।'

'आज का काम कल पर न उठा रखो।'

'जो चीज़ पीछे हटी, फिर आगे नहीं बढ़ती।'

'जो व्यक्ति बुराई को बिल्कुल नहीं जानता, वह बुराई में ज़रूर पड़ जायेगा।'

'जब कोई मुझ से पूछता है, तो मुझे उसकी बुद्धि का अन्दाज़ा हो जाता है।'

'लोगों की चिन्ता में तुम अपने को भूल न जाओ।'

'दुनिया थोड़ी-सी लो तो स्वतंत्र-जीवन बिता सकोगे।'

'तौबा की तकलीफ़ से गुनाह छोड़ देना अधिक सरल है।'

'अगर सब्र व शुक्र दो सवारियाँ होतीं, तो मैं इसकी न परवाह करता कि दोनों में से किस पर सवार हूं।'

'खुदा उस व्यक्ति का भला करे जो मेरे ऐब मेरे पास तोहफ़े में भेजता है।' (अर्थात मुझ पर मेरे ऐब ज़ाहिर करता है)

सूझ-बूझ के व्यक्ति

एक अल्लाह पर ईमान किसी भी व्यक्ति में सूझ-बूझ पैदा कर देता है। हज़रत उमर (रज़ि०) में सूझ-बूझ अपनी चरम सीमा को पहुंची हुई थी। हज़रत अब्दुल्लाह इब्ने उमर (रज़ि०) फ़रमाया करते थे कि उमर (रज़ि०) किसी मामले में यह कहते कि 'मेरा इसके बारे में यह विचार है, तो प्रायः होता वही था, जो उनका विचार होता। इससे अधिक सूझ-बूझ के उदाहरण और क्या हो सकते हैं कि उनकी बहुत सी रायें 'धर्म-आदेश' बन गई हैं। नमाज़ की अज़ान हज़रत उमर (रज़ि०) की सूझ-बूझ का ही परिणाम है। पर्दे के आदेश हज़रत उमर (रज़ि०) के मतानुसार उतरे थे। मुनाफ़िकों (कपटाचारियों) पर नमाज़ जनाज़ा न पढ़ने का आदेश हज़रत उमर की राय के मुताबिक़ था। हज़रत उमर (रज़ि०) की ही राय थी कि कुरआन का संकलन वजूद में आया। जब यह समस्या पैदा हुई कि हज़रत उमर के बाद कौन ख़लीफ़ा बनेगा और कुछ लोगों के नाम विचाराधीन आए तो हज़रत उमर (रज़ि०) ने पूरे विस्तार में हरेक के बारे में अपना मत व्यक्त किया और वह पूरे का पूरा सही निकला। वह हर कार्य में सोच-विचार को काम में लाते थे और ज़ाहिरी बातों पर भरोसा नहीं करते थे। उनका कथन था कि, 'किसी की प्रसिद्धि या ढिढोरा सुन कर धोखे में न आओ।' अक्सर कहा करते थे— 'किसी भी व्यक्ति के नमाज़-रोजा पर न जाओ,

बल्कि उसकी सच्चाई और बुद्धि को देखो।'

एक बार एक व्यक्ति ने उनके सामने किसी की प्रशंसा की। फ़रमाया 'तुम से कभी मामला पड़ा है?'

'नहीं। 'उसने कहा।

'कभी सफ़र में साथ हुआ है?' पूछा।

'नहीं।' उसने उत्तर दिया।

'तो, तुम वह बात कहते हो, जो जानते नहीं।' हज़रत उमर (रज़ि०) ने कहा।

धार्मिक जीवन

दिन को राज्य-संचालन के कार्यों में इतना व्यस्त रहते कि बहुत कम सांस लेनें की फ़ुर्सत हो पाती, इसलिए इबादत का समय रात को निर्धारित किया था। रात में ज़्यादा से ज़्यादा नमाज़ पढ़ने का आपने चलन बना लिया था। सुबह होते ही घर वालों को जगा देते। फ़ज्र की नमाज़ में बड़-बड़ी सूरतें पढ़ते। नमाज़ जमाअत के साथ पढ़ना पसन्द करते और कहा करते, मैं इसको तमाम रात की इबादत पर प्रधानता देता हूं।

फ़र्ज़ रोज़ों के अलावा नफ़्ली रोज़ों का ध्यान हमेशा रखते।हज हर साल करते और ख़ुद ही मीरे क़ाफ़िला (कारवां के सरदार) रहते।

क़यामत की पकड़ से बहुत डरते थे और हर वक़्त इसका ख़याल रहता था।'सही बुख़ारी'में है कि एक बार हज़रत अबू मूसा अशअरी (रज़ि०) को सम्बोधित कर के कहा कि क्यों अबू मूसा! तुम इस पर राज़ी हो कि हम लोग जो इस्लाम लाए और हज़रत की और प्यारे रसूल (सल्ल०) की सेवा में सदा हाज़िर रहे, इन तमाम बातों का बदला हमको यह मिले कि बराबर-बराबर छूट जाएं, यानी न हमको अज़ाब मिले, न सवाब?

हज़रत अबू मूसा (रज़ि०) ने कहा, 'नहीं,मैं तो इस पर हरगिज़ राज़ी नहीं। हमने बहुत-सी नेकियां की हैं और हम को बहुत कुछ आशाएं हैं।'

हज़रत उमर (रज़ि०) बोले, 'उस हस्ती की कसम! जिस के हाथ में उमर की जान है, मैं तो सिर्फ़ इतना ही चाहता हूं कि बिना किसी पकड़ के छूट जाऊं।'

हज़रत उमर (रज़ि०) यद्यपि इस्लाम धर्म के मूर्तिमान थे, लेकिन उनमें साम्प्रदायिक द्वेष व घृणा नाममात्र को भी न थी। यही कारण है कि वे मरते-मरते भी अपनी ईसाई व यहूदी प्रजा को न भूले और उनके प्रति दया व कृपा का व्यवहार अपनाने की ताकीद की।

आप शरई मामलों में उसकी तह तक पहुंचने की कोशिश करते, कुरआन के शब्दों की आत्मा को समझते। एक दिन बदरी सहाबी (प्यारे नबी सल्ल०) के वे साथी, जो बदर की लड़ाई में शरीक(हुए थे) मज्लिस में जमा थे। हज़रत उमर (रज़ि०) ने पूछा, 'इज़ा जाअ नसरुल्लाहे वल् फ़त्हो' (जब अल्लाह की मदद और फ़तह आ गई) से क्या तात्पर्य है?'

किसी ने कहा, 'अल्लाह का हुक्म है कि जब विजय मिले, तो हम खुदा का शुक्र बजा लाएँ।' कुछ बिल्कुल चुप रहे। हज़रत उमर (रज़ि०) ने हज़रत अब्दुल्लाह इब्न अब्बास की ओर देखा। उन्होंने कहा, इसमें प्यारे नबी के देहावसान की ओर संकेत है। हज़रत उमर (रज़ि०) ने फ़रमाया, जो तुम ने कहा, यही मेरा भी ख़याल है।

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का आदर-सम्मान उन के मन व मस्तिष्क में रचा-बसा था, और इसी कारण हुज़ूर (सल्ल०) के रिश्तेदारों का बड़ा ध्यान रखते थे। जब सहाबियों के वज़ीफ़े तय होने लगे, तो हज़रत उमर (रज़ि०) ने इस प्रस्ताव को रद्द कर दिया

कि आपके वज़ीफ़े को किसी प्रकार की प्रमुखता दी जाए। फ़रमाया सबसे पहले प्यारे नबी (सल्ल०) के ताल्लुक़ की दृष्टि से वज़ीफ़े तय किए जाएं।

सादा जीवन, उच्च विचार

हज़रत उमर (रज़ि०) के जीवन और उनके रोब व दबदबे का एक और हाल यह है कि रूम व सीरिया पर लड़ाई के लिए सेनाएँ भेजी जा रही हैं, कैसर व क़िसरा (रूमी व ईरानी सम्राट) के दूतों से मामला पेश हैं, ख़ालिद व अमीर मुआविया जैसे योद्धाओं से जवाब तलबी हो रही है, हज़रत साद इब्ने अबी वक़्क़ास, अबू मूसा अशअरी, अम्र इब्नुल आस को आदेश लिखे जा रहे हैं, लेकिन अपना हाल यह है कि देह पर बारह पैवन्द का कुर्ता है, सिर पर फटी-सी पगड़ी है पांवों में टूटे हुए जूते हैं. फिर इसी हालत में या तो कंधे पर मश्क लिए जा रहे हैं कि विधवाओं के घर पानी भरना है, या मस्जिद के किसी कोने में, फ़र्श ही पर लेटे हैं, इसलिए कि काम करते-करते थक गए हैं और नींद की झपकी आ गई है।

बार-बार मक्का से मदीना तक यात्रा की, लेकिन ख़ेमा या शामियाना कभी साथ नहीं रहा। जहां ठहरे, किसी पेड़ पर चादर डाल दी और उसी के साए में पड़े रहे। इब्ने साद (रज़ि०) का कथन है कि उनका रोज़ाना का ख़र्च दो दिरहम था, जो इस समय मुश्किल से पैंसठ पैसे पड़ता है।

एक बार अहनफ़ इब्ने कैस अरब के सरदारों के साथ उनसे मिलने को गए, देखा तो दामन चढ़ाए, इधर-उधर दौड़ते-फिरते हैं। अहनफ़ को देख कर कहा, आओ तुम भी मेरा साथ दो। बैतुलमाल का एक ऊंट भाग गया है। तुम जानते हो, एक ऊंट में कितने ग़रीबों का हक़ शामिल है। एक व्यक्ति ने कहा, अमीरुल मोमिनीन! आप क्यों कष्ट सहन करते हैं? किसी दास को हुक्म दीजिए, वह ढूंढ

लाएगा। फ़रमाया, 'मुझसे बढ़ कर कौन दास हो सकता है?'

हज़रत उमर (रज़ि०) ने सीरिया की यात्रा की तो शहा के क़रीब पहुँच कर ज़रूरत पूरी करने के लिए सवारी से उतरे। उनका दास असलम भी साथ था। फ़ारिग़ हो कर आए तो भूल कर या किसी मसलहत से, असलम के ऊंट पर सवार हो गए। इधर सीरियावासी स्वागत के लिए आ रहे थे। जो आता था, पहले की ओर रुख़ कर लिया करता था। वह हज़रत उमर (रज़ि०) की ओर इशारा करता था। लोगों को आश्चर्य होता था और आपस में कानाफूसी करते थे। हज़रत उमर (रज़ि०) ने फ़रमाया कि उनकी निगाहें शान व शौकत ढूंढ रही हैं, वह यहां कहां?

एक बार खुत्बे में कहा कि लोगो! एक समय में, मैं इतना निर्धन था कि लोगों को पानी भर कर ला दिया करता था। वे इसके बदले में मुझे छोहारे देते थे, वही खाकर बसर करता था। इतना कह कर मिम्बर से उतर आए। लोगों को आश्चर्य हुआ, यह मिम्बर पर कहने की क्या बात थी? फ़रमाया कि मेरी तबीयत में तनिक गर्व पैदा हो गया था, यह उस की दवा थी।

सन् 23 हि० में हज यात्रा की। यह वह समय था जब उनका रोब व दबदबा चरमोत्कर्ष को पहुंचा हुआ था। हज़रत सईद इब्नुल मुसय्यिब, उनके साथ थे। उनका बयान है कि हज़रत उमर (रज़ि०) जब अबतह में पहुंचे तो कंकड़ियों को समेट कर उस पर कपड़ा डाल दिया और उसको तकिया बना कर फ़र्श पर लेट गए। फिर आसमान की ओर सिर उठाया और कहा— 'हे ख़ुदा! मेरी उम्र अब ज़्यादा हो गई और शक्ति घट गई, अब मुझको दुनिया से उठा ले।'

सामान्य रूप से अमीरुल मोमिनीन का भोजन जौ की रोटी और ज़ैतून का तेल था। रोटी कभी-कभी गेहूं की भी हुआ करती

थी, लेकिन आटा छाना नहीं जाता था। सूखे के दिनों में जौ अपने लिए अनिवार्य कर लिया था। दस्तरख़ान पर कभी-कभी ग़ोश्त भी आ जाता। दूध तरकारी और सिरका भी कभी खाने में आ जाता।

पहनावा भी बहुत सादा था। प्रायः कुर्त्ता और तहबन्द ही पहनते, सिर पर अक्सर एक विशेष प्रकार की टोपी ओढ़े रहते, जिसे बुरनस कहते हैं। एक बार कुछ लोग आपसे मिलने के लिए आए और बाहर खड़े इन्तिज़ार करते रहे। आपको घर से निकलने में कुछ देर हो गई। पता लगाने पर मालूम हुआ कि कपड़ों को धो कर धूप में डाल रखा था और इन्तिज़ार कर रहे थे कि सूख जाए तो उन्हें पहन कर बाहर आएं।

हज़रत उमर (रज़ि०) का जीवन बहुत ही सादा था। कपड़ों में अक्सर पैवन्द लगा होता। लेकिन इन तमाम बातों से यह विचार नहीं करना चाहिए कि वे सन्यास और संसार-त्याग के जीवन को पसन्द करते थे। एक बार एक व्यक्ति जिसे उन्होंने यमन का गवर्नर नियुक्त कर रखा था, इस तरह उनसे मिलने आया कि देह पर अति मूल्यवान वस्त्र थे और बालों में खूब तेल पड़ा हुआ था। हज़रत उमर (रज़ि०) अति क्रुद्ध हुए और उन कपड़ों को उतरवा, उन्हें मोटा-झोटा कपड़ा पहना दिया। दूसरी बार फिर मिलने आया तो परेशान हाल, बिखरे बाल और फटे-पुराने कपड़े पहन कर आया। फ़र्माया कि यह भी अभिप्रेत नहीं कि मनुष्य बेहाल घूमता रहे।

साढ़े दस साल का शासन-काल

हज़रत उमर (रज़ि०) ने लगभग साढ़े दास साल ख़िलाफ़त की और इस छोटी-सी मुद्दत में अपूर्व उदाहरण प्रस्तुत किया। आपने बैतुलमाल खोला, अदालतें क़ायम की, क़ाज़ी मुक़र्रर किए, तारीख़ और सन् जारी किया, जो आज तक जारी है, फ़ौज़ी दफ़्तरें तरतीब दिया, वालन्टियरों के वेतन निश्चित किए, दफ़्तरे माल क़ायम किया, पैमाइश जारी की, जनगणना कराई, नहरें खुदवाई, नए

शहर जैसे कूफ़ा बसरा, जज़ीरा, फ़िस्तात और मूसल आदि आबाद किए, अधिकृत देशों को प्रान्तों में विभाजित किया, उश्र मुकर्रर किया, जेलखाना कायम किया, कोड़े का इस्तेमाल किया, रातों को गश्त लगाकर जनता की हालत जानने का तरीक़ा निकाला, पुलिस-विभाग स्थापित किया, फ़ौजी छावनियां कायम कीं, सराएँ बनवाईं, अनाथालय बनवाए, बच्चों के वज़ीफ़े तय किए, मेहमानखाने क़ायम किए, तात्पर्य यह कि हज़रत उमर (रज़ि०) का शासन-काल इस्लामी इतिहास का स्वर्णिम युग था, एक आदर्श युग।

अमीरुल मोमिनीन हज़रत उमर (रज़ि०) के सात बेटे थे— (1) हज़रत अब्दुल्लाह (2) हज़रत उबैदुल्लाह (3) हज़रत आसिम (4) हज़रत अबू शहमा (5) हज़रत अब्दुर्रहमान (6) हज़रत ज़ैद (7) हज़रत मुज़ीर (रज़ि०)। इनमें से पहले तीन अधिक प्रसिद्ध हुए हैं। हज़रत अब्दुल्लाह तो फ़िक़्ह (धर्मशास्त्र) और हदीस के विशेषज्ञ समझे जाते हैं। उन्होंने अपने पिता के साथ मक्का ही में इस्लाम कुबूल किया था। हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के साथ बहुत-सी लड़ाइयों में भी शरीक हुए थे। जब अमीर मुआविया (रज़ि०) और हज़रत अली (रज़ि०) के बीच खिलाफ़त के बारे में अचानक झगड़ा चल रहा था, तो मुसलमानों ने हज़रत अब्दुल्लाह से आ कर कहा कि आप खिलाफ़त पर तैयार हो जाएं, तो यह झगड़ा ख़त्म हो जाएगा। आप बोले, मैं मुसलमानों के खून से खिलाफ़त ख़रीदना नहीं चाहता।

उपसंहार

सामान्य रूप से देखा जाता है कि कुछ लोगों में कुछ गुण होते हैं, तो कुछ अवगुण भी, मगर हज़रत उमर (रज़ि०) के पूरे जीवन पर गम्भीर दृष्टि डालिए।तो स्पष्ट हो जाएगा कि उस व्यक्ति में

अवगुणों का दूर-दूर तक पता नहीं। वे विश्व-विजेता सिकन्दर भी थे और दार्शनिक अरस्तू भी, वे चमत्कारी मसीह भी थे और न्यायी शासक सुलैमान भी, वे वीर योद्धा तैमूर भी थे और बेहतरीन प्रशासक नौ शेरवां भी, वे फ़िक्ह (धर्मशास्त्र) के इमाम अबू हनीफ़ा भी थे और त्यागप्रिय इब्राहिम अदहम भी। सिकन्दर हर मौक़े पर अरस्तू की हिदायतों का सहारा लेकर चलता था, अकबर के पर्दे में अबुल फ़ज़ल और टोडरमल काम करते थे, अब्बासियों की महानता बरामका के दम से थी, लेकिन हज़रत उमर (रज़ि०) को सिर्फ़ आत्म-विश्वास और अल्लाह का फ़ज़्ल प्राप्त था। हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) की चमत्कारी विजयों को देखकर लोगों का विचार हो गया था कि सफलता की कुंजी तो उन्हीं के हाथ में है, लेकिन जब हज़रत उमर (रज़ि०) ने उन्हें पदच्युत कर दिया, तो किसी को एहसास तक न हुआ कि कल में से कौन पुर्ज़ा निकल गया है।

जब आप सीरिया की यात्रा के लिए तैयार हुए तो हलचल मच गई, मगर सिवाय एक ऊंट के आप के पास कुछ भी न था। सिकन्दर, चंगेज़ और नैपोलियन, जिनके साथ हज़ारों और लाखों सवार हुआ करते थे, हरीर व दीबाज के ख़ेमे उनकी शानोशौकत ज़ाहिर करने और लोगों के दिलों में रोब व दाब पैदा करने के लिए काफ़ी थे, जिनकी तलवारों की चमक आंखों को चुंधिया देती थी, नेज़े और बन्दूकें दिलों को हिला देती थीं, फिर भी उनका वह रोब न था, जो हज़रत उमर (रज़ि०) का था, जिनके कुर्तों में 12-12 पैवन्द लगे होते थे, जो कांधे पर मश्क रख कर ग़रीब औरतों के यहां पानी भर आते थे, ऊंटों के बदन पर अपने हाथ से तेल मलते थे, पहरेदार और 'बाडी गार्ड' के नाम तक को न जानते थे। हम तो यह ज़रूर कहेंगे कि बेशक हज़रत उमर (रज़ि०) उन इन्सानों में से थे जिस पर मानवता भी गर्व करे, तो कम है।